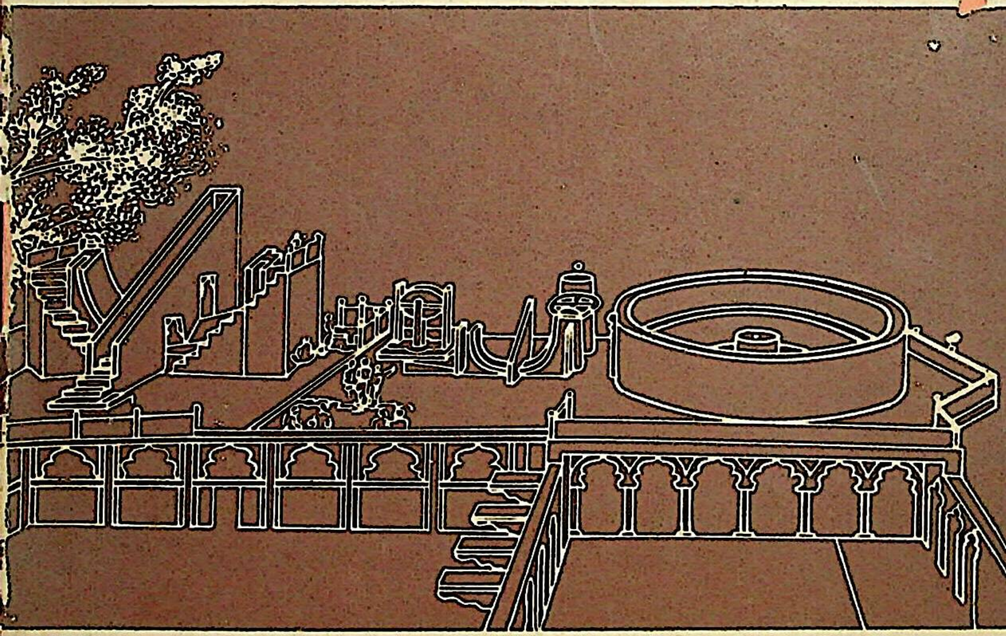
2.5

भारतीय काल गणना की रूपरेखा



डा. दामोदर झा

~~[illegible]~~

~~[illegible]~~

~~दामोदर मिश्र~~

~~२५।६।१९८५~~

श्रद्धेय गुरुचरण डॉ. महाप्रभुलाल गोस्वामी
जी को
सादर समर्पित।

दामोदर मिश्र
२४।१२।१९८५

ॐ श्रीगणेशाय नमः

भारतीय कालगणना की रूपरेखा

लेखक :

डा दामोदर झा

गणित-ज्यौतिष, फलितज्यौतिष, साहित्याचार्य

एम० ए० (संस्कृत), विद्यावारिधि (पी० एच० डी०) लब्धस्वर्णपदकः

प्रवक्ता :—

विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु संस्थान

पंजाब विश्वविद्यालय

साधु—आश्रम, होशियारपुर (पंजाब)

संस्करण : 'प्रथम'

प्रकाशन-तिथि :— 'हिन्दू-साम्राज्य दिवस'
युगाब्द—५०८७-बहुधान्यक-संवत्सर, ज्येष्ठ शुक्ला-त्रयोदशी,
तदनुसार—१ जून, १९८५ ईस्वी,

प्रकाशक :— योगक्षेम प्रतिष्ठान, दिल्ली
के लिए
'अपना-साहित्य'
आकाशवाणी—प्रकाशन, पीलीकोठी
गोपालनगर—जालन्धर (पंजाब)—१४४००८

मुद्रक :— रोहिणी-प्रिंटर्स
कोट किशनचन्द, जालन्धर ।

समर्पण

कालगणना के

आचार्यों को

सादर समर्पित

भूमिका

"श्री बाबा साहब आप्टे स्मारक समिति" द्वारा प्रवर्तित 'भारतीय इतिहास संकलन योजना' के अधीन प्रकाशित पुस्तक "भारतीय कालगणना की रूपरेखा" आपकी सेवा में प्रस्तुत है। स्व० उमाकान्त केशव आप्टे उपाख्य बाबा साहब आप्टे एक आस्थाशील लेखक, चिन्तक और लोकप्रियवक्ता थे। जिनके जीवन और चिन्तन को नागपुर के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी डा० केशवराव बलीराम हेडगेवार के सशक्त संसर्ग ने एक राष्ट्रीय-दिशा प्रदान की। फलत: राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के निष्ठापूर्वक स्वयंसेवक एवं प्रचारक होकर, उन्होंने जीवन व चिन्तन को राष्ट्रार्पित किया।

स्व० बाबा साहब आप्टे जी ने भारतीय-सांस्कृतिक इतिहासधारा के अनुशीलन से अपना यह मत सुस्थिर कर लिया था कि "भारत-मृत्युञ्जय है।" विश्व के अनेकों देश जहां साधारण आघातों को भी नहीं सह सके और काल-कवलित हो गये, वहीं 'भारत' हजारों वर्षों से प्रतिकूल परिवर्तनों को आतमसात् करते हुए, अपनी अक्षय संञ्जीवनी-शक्ति के बल पर आज तक भी अस्तित्वशील है। यह शक्ति कालजयी और प्रचण्ड क्यों है ? कारण कि इसका अधिष्ठान राजनैतिक-सत्ता एवं भौगोलिक सम्बोधि न होकर, अक्षय आध्यात्मनिष्ठ-समाज और सांस्कृतिक-चेतना है। इस चेतना की मूलभित्ति है गतिशील, अनादि, गौरवशाली-इतिहास की परम्परा, जो सही अर्थ में राष्ट्र का स्वाभिमान है, उसकी पहचान है और अटूट क्रिया-शक्ति है।

'भारतीय इतिहास संकलन योजना' का महान् प्रकल्प जिस मूल प्रश्न से उभरा है— वह है अतीत में ऐतिहासिक-घटनाक्रमों का पूर्वाग्रह-युक्त संयोजन। जब हम पूर्वरचित भारतीय इतिहास ग्रन्थों पर दृष्टिपात करते हैं, तो यह सुस्पष्ट हो जाता है कि विदेशी-आक्रान्ताओं के द्वारा प्रदत्त ऐतिहासिक विवरण निश्चय ही विजित भारतीय-जनता के प्रति हीनभावना और विजेताओं की अहंमन्यता का ही उद्घाटक हैं। भारतीय सांस्कृतिक-निष्ठा तथा समग्र समाज-चेतना की पूर्ण उपेक्षा से उद्भूत सामग्री राष्ट्रीय-अस्मिता

की विनाशिका हैं । घटनाओं के कालक्रम की तोड़ मरोड़ व उनकी पूर्वाग्रहयुक्त कार्यकारण श्रृंखला, तथा कालखण्डों की परस्पर असम्बद्धता एवं विदेशी विजेता-भावना से किये गये नामकरण, आज भी अन्धानुकरण के विषय बन गये हैं । ऐतिहासिक रूढ़ियों को चुनौती देकर प्राप्त-तथ्याधारित प्रामाणिकता, यथार्थ देशकालिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के समग्र आकलन ही भारतीय इतिहास-लेखन का आरम्भ बिन्दु है । यह समग्रता जहाँ प्रवहमान नित्य-सांस्कृतिक काल-धारा के सन्दर्भ में ध्यातव्य है, वहीं वह अखण्ड भारतीय सामाजिक-चेतना के विषय में भी है, जो कृत्रिम भौगोलिक विभाजनों के समक्ष प्रश्न-चिन्ह सिद्ध हो रहे हैं । भारतीय राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक-एकात्मता के आलोक में इतिहास की सर्जना ही स्व० बाबा साहब आप्टे जी का सारस्वत उद्घोष रहा ।

आर्य-द्रविड़ विवाद, प्राचीन, अंधकार-युग तथा आक्रमण-काल आदि के रूप में पुरस्कृत कृत्रिम एवं पूर्वाग्रह युक्त प्रस्तावों को परीक्षा के विना अब ग्रहण नहीं किया जा सकता । पुरातत्त्व एवं पुराणसामग्री की संवादिता श्रमसाध्य अवश्य हैं, किन्तु असम्भव तो कदापि नहीं । इतिहास-पुराण परम्पराओं और लोकजीवन के तथ्यों को नवीन इतिहास-लेखन में उचित-वैधता के साथ स्वीकारना ही होगा । भारतीय इतिहास बोध जिस आधारभूत सामग्री से तथ्यों को संयोजित करने की दृष्टि पाता है, वे आज भी उपादेय हैं । इसकी पुष्टि वर्तमान इतिहासकार दबे स्वर से कर रहे हैं ।

'इतिहास संकलन योजना' ऐसे निष्ठावान तथ्यप्रेमी इतिहासविदों को एक मंच प्रदान करती है, जो राष्ट्रीयता के व्यापक सूत्र में ही घटनाक्रमों को संयोजित करने के पक्षधर हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक इतिहास की आधारभूत मान्यता 'काल-निर्धारण' की मूलभूत आवश्यकता को दृष्टिगत करके लिखी गयी है । क्योंकि अपने देश में अनेक राजवंशीय और प्रादेशिक, कई प्रकार की कालगणनाएं प्रचलित है । इस कारण ऐतिहासिक घटनाओं के संकलन एवं उनके क्रम मिलाने में कठिनाई उत्पन्न होती है । अतः कालगणना की एक पद्धत्ति को स्वीकार कर, कालक्रमानुसार, सर्वांगीण राष्ट्रीय-समाज जीवन के इतिहास की रचना होनी चाहिए । ऐसी देशव्यापी कालगणना युगों की है, जो कालगणना के शास्त्र पर आधारित है । इस शास्त्र और भारतीय अभिलेखों की परम्परा के अनुसार

वर्तमान में कलियुग है, जिसका ५०८७ वाँ वर्ष आज चल रहा है। इसके अतिरिक्त उत्तर-भारत में विक्रमी-संवत् एवं दक्षिणी-भारत में शक-संवत् का विशेष प्रचार है। परन्तु ये दोनों संवत् अल्पकालिक तथा राजकीय व्यक्ति से सम्बद्ध होने के कारण सम्पूर्ण देशव्यापी नहीं हैं। सम्पूर्ण देशव्यापी तथा परम्परागत संवत् तो कलियुग-कालगणना का ही है। इसीप्रकार एक संवत्सर-चक्र की गणना भी सम्पूर्ण देश में प्रचलित है। ये दोनों ही कालगणनाएँ ज्यौतिष के वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। अतः इन दोनों कालगणनाओं के आधार पर सम्पूर्ण भारतवर्ष का कालक्रमानुसार इतिहास संकलित हो यही लेखक का अभिप्राय रहा है।

डा० दामोदर झा ने प्रस्तुत पुस्तक "भारतीय कालगणना की रूपरेखा" में विश्व में प्रचलित अन्य कालगणनाओं से भारतीय कालगणना की तुलना करते हुए, इसकी वैज्ञानिकता एवं श्रेष्ठता को समाज के समक्ष उपस्थित करने का विनम्र प्रयास किया है। आशा है, इससे भारतीय इतिहास के कालक्रम का वैज्ञानिक आधार स्पष्ट होगा, और संशोधकों के लिए एक स्पष्ट दिक् संकेत मिलेगा।

मोरोपन्त पिंगले

निदेशक

भारतीय इतिहास संकलन योजना

आमुख

भारतीय-कालगणाना कब प्रारम्भ हुई ? यह निश्चय कर पाना कठिन है। किन्तु भीमवेटका के चित्रों का अभ्यास करते समय कतिपय पशुचित्रों का पुनरंकन किया गया है। वह भी भिन्न-भिन्न प्रागैतिहासिक काल में। क्या इन दैविक पशुओं का अंकन आकाशस्थ तारकसमूहों से तो सम्बद्ध नहीं है ? भीमवेटका में महावृषभ व कर्क का तीन भिन्न-भिन्न शैलियों में, तीन स्थानों पर चित्रण है। वैसे ही नरसिंहगढ़, अडोणी आदि स्थानों पर भी है। महासूर्य का चित्रण भी पर्याप्त-स्थानों पर है। यथा-भोपाल, गणेशधारी, कथोटिया आदि। इन चित्रणों के पीछें प्रागैतिहासिक-मानव की लोक-गाथाऍं रहीं होंगी, इसमें संशय नहीं है। वराहगिरि भीमवेटका में तथा भीमवेटका III एफ-२३ में दो ऐसे चित्र हैं, जिनमें मानव आकृतियों का अंकन है, तथा उनके हर जोडे पर एक गोलाकार बना है। क्या यह सम्भव नहीं है कि आकाशस्थ-तारकाओं का ही यह चित्रण हो ? अमेरिका में एक-दो शैलाश्रयों में, मैंने छत पर तारका-समूह का चित्रण देखा है। अर्थात् वैदिक ज्योतिष-कथाओं का आधार तो निश्चित ही प्रागैतिहासिक काल से सम्बद्ध है।

यज्ञ-संस्था प्रागवैदिक या आद्यवैदिक मानी जाती है। मध्याश्मीय (मिसोलिथिक) चित्रों में अग्नि-पूजा के प्रमाण धर्मपुरी, एवं भोपाल में मिले हैं। अश्यूलीय (२५०,०००) काल में अग्नि-प्रज्वलन का प्रमाण यूरोपीय (इटली) भूमि पर तथा भीमवेटका में मिलता है। अतः यज्ञ-संस्था का विकास इस युग में हुआ हो तो आश्चर्य नहीं है। वैदिक-यज्ञ-संस्था के हेतु कालनिर्णय आवश्यक था। अतः ज्योतिष का विकास हुआ। वैदिक यज्ञ-संस्था के प्रमाण हड़प्पा, मोहनजोदाड़ो, लोथल, सुरकोरडा, कालीबंगा, दंगबाड़ा, कायथा के ताम्राश्मीय बस्तियों में मिले हैं। अतः वैदिक कालगणना का पूर्ण विकास ताम्राश्मयुग में हो गया था, इसमें संशय नहीं है। अतः कालनिर्णय की जो भारतीय पद्धतियां विकसित हुई-उनका अभ्यास हो, तभी भारतीय ऐतिहासिक-परम्परा को हम पुनश्च वैज्ञानिकजगत् के सामने रख सकते हैं। श्री बाबा साहब आप्टे स्मारक समिति की 'इतिहास संकलन योजना' के अन्तगर्त इसका विचार आवश्यक है।

डॉ० दामोदर झा द्वारा लिखित 'भारतीय कालगणना की रूपरेखा' पुस्तक उस कड़ी का प्रथमपुष्प है। यह अभ्यासपूर्ण कृति हमारे लिए एक दिशा देगी, इस विश्वास के साथ हम इसे संशोधकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। जिससे वैज्ञानिक-ज्यौतिष का अभ्यास करने वाले अभ्यासियों में एक प्रेरणा जाग्रत होगी। साथ ही प्रगति के स्पष्ट मार्ग पर अग्रसर होते हुए, हम अगले प्रयत्नों को और भी अधिक उत्साह के साथ कर पावेगें।

पद्मश्री डा० विष्णु श्रीधर वाकणकर
अवकाश प्राप्त-पुरातत्त्वविद्
उज्जैन विश्वविद्यालय, उज्जैन म०प्र०

निदेशक
शैलचित्र शोधसंस्थान
भारती कलाभवन
माधवनगर-उज्जैन, म. प्र.

"श्री"

प्राक्कथन

"भारतीय कालगणना की रूपरेखा" पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे स्वाभाविक प्रसन्नता तथा सन्तोष का अनुभव हो रहा है। कालगणना प्रत्येक समाज की सभ्यता और संस्कृति की संवाहिका होती है। क्योंकि समाज की सभ्यता और संस्कृति की गौरवपूर्ण अथवा गौरवहीन घटनाएं, किसी स्थान तथा काल से ही सम्बद्ध होती हैं। घटना तो तत्क्षण घटित होकर विलुप्त हो जाती है अथवा अपनी क्रमश: मन्द से मन्दतर होती हुई तरंगें छोड़ जाती है। स्थान भी जड़ होने के कारण किसी घटना को संजो नहीं पाता। अत: गतिशील काल ही घटनाओं को जीवित रखने का सामर्थ्य रखता है। दूसरी तरफ अच्छी-बुरी घटनाओं का संचित कोष ही सभ्यता तथा संस्कृति कहलाता है। इस कोष की कोठरी ही इतिहास है। जिसका द्वार कालगणना के प्रकाश में ही खुलता है। यदि हम किसी की कालगणना को जाने बिना उसके इतिहास की कोठरी में घुसना चाहेंगे, तो हमें उस कोठरी में सेंध मारनी पड़ेगी और हम पहली दृष्टि में ही चोर सिद्ध होंगे, चाहे घर अपना ही क्यों न हो। मैं समझता हूं-सभ्यता और संस्कृति का प्रेमी कोई भी व्यक्ति चोर बनना नहीं चाहता।

इतिहास हमें सुखद वर्तमान के आधार पर स्वर्णिम भविष्य बनाने की प्रेरणा देता है। यदि हमें अपना इतिहास-बोध न हो तो हम अपने मां-बाप को भी पहचान नहीं पायेंगे और ऐसे स्वाभिमानरहित हो जायेंगे कि किसी को भी अपना मां-बाप बना कर मिथ्यागौरव का अभिमान करेंगे, जैसे आजकल कुछ तथाकथित भारतीयजन अंग्रेजीराज की पराधीनता के सुख का वर्णन करते नहीं अघाते।

हमारे इतिहास, सभ्यता और संस्कृति के मन्दिरों के द्वार घास-फूस से ढक गये हैं। कुछ लोगों ने वहां पर कूड़े डाल-डाल कर उसे ढकने का प्रयास भी किया है। मेरा विश्वास है, यह पुस्तिका पाठकों को एक हाथ में टार्च और दूसरे हाथ में तलवार प्रदान करेगी, जिससे पाठक इतिहास मन्दिर के द्वार की सफाई कर पायेंगे।

इस पुस्तक के तीन खण्ड हैं :—

१. ब्रह्माण्ड एवं सौरपरिवार का परिचय, २. कालगणना तथा ३. संवत् गणना।

इस पुस्तक में मैंने विशाल साहित्य से छान कर वर्तमान के लिए अत्यन्त उपयोगी सूत्रों को ही उपस्थित किया है। अधिकतर कई पृष्ठों के विषय को एक-एक वाक्य में बताने का प्रयास किया है। अतः कई जगह एक वाक्य हटाने से भी अस्पष्टता आ जाती है। स्थान और अवसर के अनुसार मुझे ऐसा ही करना था। इस संक्षिप्त पुस्तक का उद्देश्य पाठकों की रुचि को जाग्रत करना है। यदि इससे कुछ भी ऐसा हो सका तो मैं समझूंगा कि इससे चिर-चिरंतन इतिहासाग्नि में मेरी एक तिल-मात्र की आहुति सफल हुई।

यह पुस्तक कभी नहीं लिखी जाती यदि श्री बाबासाहेब आपटे स्मारक समिति की 'भारतीय इतिहास संकलन योजना' के अखिल भारतीय निदेशक माननीय श्री मोरोपन्त पिंगले जी तथा उत्तराञ्चल प्रमुख ठाकुर श्री रामसिंह जी की निरन्तर प्रेरणा मुझे न मिलती। अतः प्रयोजक कर्त्ता के रूप में इसका श्रेय उन्हीं महानुभावों को जाता है यद्यपि वे स्वयं राष्ट्र के निःश्रेयस के निष्काम साधक हैं।

मैं 'योगक्षेम प्रतिष्ठान, दिल्ली' का भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंनें इस पुस्तक को छपवा कर, 'भारतीय कालगणना' के स्वरूप को जनसामान्य तक पहुंचाने में अमूल्य सहयोग प्रदान किया है।

इस कार्य में जिस किसी लेखक की रचना तथा व्यक्ति-विशेष से जो भी सहयोग मिला है, उनके प्रति सम्मान-पूर्ण कृतज्ञता को अपने हृदय में ही स्थान देते हुए मैं प्रार्थना करता हूँ कि विज्ञ पाठक इसकी त्रुटियों की सूचना मुझे देने की कृपा करेंगे जिससे मैं अपनी भूलों को सुधार पाऊंगा।

निवेदक

दामोदर झा

'विषयानुक्रमणिका'

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	ग्रन्थ का उपक्रम	१
२.	काल का स्वरूप	१
३.	सृष्टि	३
४.	सौरमण्डल	५
५.	कालगणना का आधार	८
६.	काल विभाग	८
७.	दैनिक भूभ्रम अथवा नाक्षत्र दिन	९
८.	पृथ्वी की वार्षिक गति	१०
९.	सूर्यक्रान्ति एवम् अयनवृत्त	११
१०.	ग्रह-उपग्रहों की गति	१२
११.	सम्पूर्ण आकाश का २७ नक्षत्रों में विभाजन	१२
१२.	नक्षत्र-चक्र का प्रारम्भ	१४
१३.	नक्षत्रों की तारासंख्या, आकृति, कालांश, योगतारा और उनके भोग और शर	१५
१४.	राशि	१८
१५.	सौरपिण्डों का नामकरण	१८
१६.	सूर्य	१८
१७.	बुध	१९
१८.	शुक्र	२०
१९.	पृथ्वी	२०
२०.	मंगल	२२
२१.	वृहस्पति	२३
२२.	शनि	२४

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
२३.	चन्द्रमा	२४
२४.	चन्द्रकलायें	२५
२५.	राहु-केतु तथा सूर्य-चन्द्र ग्रहण	२६
२६.	कालमान	२७
२७.	कालगणना का आरम्भ	२८
२८.	नाक्षत्रमान	२८
२९.	सावन	२९
३०.	वार प्रवेश	२९
३१.	सावनदिन-गणना	२९
३२.	सप्ताह तथा वारगणना-क्रम	३०
३३.	राष्ट्रीय स्थानीय-समय तथा स्थिर-समय	३३
३४.	अक्षांश और देशान्तर रेखाएं	३४
३५.	भारत का स्थिर-समय	३५
३६.	भारत के सभी जिला-मुख्यालयों के अक्षांश और ग्रीनविच से देशान्तर	३६
३७.	स्थिर-समय (Standard-Time) से स्थानीय-समय (Local-Time) बनाना	४३
३८.	स्थिर-समय के सूर्योदय-सूर्यास्त से स्थानीय सूर्योदय-सूर्यास्त निकालना	४३
३९.	भारत के पड़ोसी देशों के अक्षांश देशान्तर	४४
४०.	अन्य विदेशों के अक्षांश-देशान्तर	४६
४१.	वेलान्तर-सारणी	४७
४२.	स्थिर-समय से स्थानीय-समय लाने का उदाहरण	५२
४३.	स्थानीय-समय से स्थिर-समय लाने का उदाहरण	५२
४४.	सूर्योदय और सूर्यास्त काल का ज्ञान	५३
४५.	सूक्ष्म सूर्योदय-सूर्यास्त साधन-सारणियां	५३
४६.	क्रान्तिसारणी तथा चरसारणी का उपयोग	६२
४७.	सूक्ष्म सूर्योदय-सूर्यास्त साधन	६२
४८.	दिनमान साधन	६३

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
४९.	चन्द्रमान-तिथि	६३
५०.	पक्ष	६४
५१.	मास	६४
५२.	मासों के नाम	६५
५३.	चान्द्रवर्ष	६६
५४.	सौरमान	६६
५५.	सौरमास	६७
५६.	सौरवर्ष	६७
५७.	ऋतुचक्र	६८
५८.	उत्तरायण-दक्षिणायन तथा उत्तर-दक्षिण गोल	६९
५९.	वार्हस्पत्यमान	७०
६०.	पंचवर्षीय युग	७१
६१.	द्वादश-वर्षीय युग	७२
६२.	साठ-वर्षीय युग	७२
६३.	साठ-वर्षीय संवत्सर-चक्र का आरम्भ	७५
६४.	उत्तर-भारत में संवत्सर जानने की विधि	७६
६५.	दक्षिण-भारत में संवत्सर जानने की विधि	७६
६६.	कालमानों का समन्वय	७७
६७.	चान्द्र और सावन कालमानों का समन्वय—क्षयतिथि	७७
६८.	चान्द्र और सौरमानों का समन्वय—अधिकमास	७७
६९.	क्षयमास	७८
७०.	पंचांग-परिचय	७९
७१.	योग	७९
७२.	करण	८०
७३.	पितृमान	८०
७४.	दिव्यमान	८१
७५.	युगमान	८१

ॐ श्री गणेशाय नमः । श्री दुर्गायैनमः ।

भारतीय कालगणना की रूपरेखा

उपक्रम

जैसा कि उपर्युक्त शीर्षक से ज्ञात होता है, हम यहां भारतीय कालगणना की रूपरेखा प्रस्तुत करने जा रहे हैं। उपर्युक्त शीर्षक में काल शब्द सबसे प्रधान है। उसी की गणना की रूपरेखा हमें ज्ञात करनी है। विश्व के विभिन्न देशों में काल की विभिन्न गणनाएं प्रचलित रही हैं। उन सभी गणनाओं को पूर्णतः जानने का यहां अवसर नहीं है। हम यहां काल की केवल भारतीय गणना को ही जानने का प्रयास करेंगे। इस प्रकार यहां "भारतीय कालगणना" शब्द से हमारा तात्पर्य है, भारतवर्ष में आविष्कृत तथा प्रचलित कालगणना। प्रासंगिक रूप से विश्व की अन्य कालगणनाओं का संक्षिप्त परिचय भी प्रस्तुत किया जायेगा।

काल का स्वरूप

हम काल की गणना जानने चले हैं। इसलिए हमें 'काल' शब्द को उसके अर्थ के साथ सबसे प्रथम जानना चाहिए। काल शब्द संस्कृत के "कल संख्याने" इस गणनार्थक धातु से बना है। इसका अर्थ है गिनती करने वाला। सृष्टि की सभी जड़-चेतन वस्तुओं की आयु की यह गणना करता रहता है; और अन्त में सभी पदार्थों को अपने अन्दर समाहित कर लेता है। इसका निर्बाध अनुशासन विश्व के प्रत्येक पदार्थ पर अनिवार्य रूप से लागू है।

भारतीय दार्शनिकों में कइयों ने काल को ही परमेश्वर माना है। इसका स्वरूप नित्य है। अर्थात् यह निरन्तर चलने वाला तत्त्व है, जो भूतकाल में भी था, अब भी है और भविष्य में भी रहेगा। यह अनादि और अनन्त है। यह अदृश्य है। अतः इसे हम सम्पूर्ण रूप में जान नहीं सकते; गणना द्वारा इसके कुछ अंश को केवल अनुभव कर सकते हैं। उसकी क्रियायें जिन पदार्थों पर होती हैं, उनकी घटनाओं को हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं। अर्थात् वह स्वयं अप्रत्यक्ष है। चराचर विश्व की वह अन्तिम सत्ता है। उससे ऊपर कोई नहीं। इसी "अन्तिम" शब्द को आधुनिक अंग्रेजी में Time कहते हैं।

जो पुरानी अंग्रेजी में Tima लिखा जाता था। यह शब्द स्पष्टतः "अन्तिम" शब्द "अन्" घिस (लोप हो) जाने से बना है। भोजीय शैवागम में काल को मूल प्रकृति से उत्पन्न माना गया है। वहां का वचन है—

पुंसो जगतः कृतये मायातस्तत्त्वपञ्चकं भवति ।
कालो नियतिश्च तथा कला च विद्या च रागश्च ॥
नानाविधशक्तिमयी सा जनयति कालतत्त्वमेवादौ ।
भाविभवद्भूतमयं कलयति जगदेष कालोऽतः ॥

(कालमाधव, उपोद्घात)

पुरुष के जगत् की सृष्टि के लिए माया से काल आदि पाँच तत्व उत्पन्न होते हैं। अर्थात् अनेक प्रकार की शक्तिवाली मूलप्रकृति सृष्टि के आदि में कालतत्त्व को उत्पन्न करती है। वह काल भविष्य, वर्तमान और भूतमय है। यह काल चूंकि जागतिक प्रत्येक वस्तु की कलना अर्थात् गणना करता रहता है। इसलिए इसे काल कहा जाता है।

उपर्युक्त श्लोक में पहले भविष्य, फिर वर्तमान और तब भूतकाल का क्रमशः उल्लेख किया गया है। इस प्रकार काल को अपने मूल कारण की ओर आधृत बतलाया गया है। अर्थात् भविष्य को वर्तमान पर और वर्तमान को भूतकाल पर आधृत सिद्ध किया गया है। इस श्लोक में कालशब्द का व्युत्पत्त्यर्थ भी स्पष्टतः बतलाया गया है।

यहाँ भोजराज ने काल के गणनायोग्य रूप का ही वर्णन किया है। यह उनके— 'कलयति जगदेप कालोऽतः' - इस वाक्य से स्पष्ट है। अतः इस काल को प्रकृतिप्रसूत अर्थात् प्राकृतिक ग्रह-नक्षत्रों पर आधृत माना गया है। अन्य दार्शनिकों का नित्य काल इनका अभिप्रेत नहीं है। वह नित्य काल तो परमेश्वर का स्वरूप है। वह हमारी गणना का विषय नहीं।

तैत्तिरीयशाखा के नारायणीयोपनिषत् (अनुवाक-१) में भी विद्युत्-पुरुष से कालावयवों की उत्पत्ति बतलाते हुए कहा गया है—

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि ।
कला मुहूर्ताः काष्ठाश्चाहोरात्राश्च सर्वशः ॥
अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरश्च कल्पन्ताम् ॥

(कालमाधव, उपोद्घात)

इस प्रकार काल के नित्य और अनित्य ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

काल-सम्बन्धी उपर्युक्त धारणाओं का प्रतिपादन सूर्यसिद्धान्त (मध्यमाधिकार, श्लोक १०-११) में इस रूप में किया गया है—

लोकानामन्तकृत् काल: कालोऽन्य: कलनात्मक: ।
स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान् मूर्तश्चामूर्त उच्यते ॥
प्राणादि: कथितो मूर्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्तसंज्ञक: ।

अर्थात् - सभी चराचर लोकों का अन्त करने वाला एक वास्तविक काल है। यह अगणनीय है । इससे भिन्न एक गणनायोग्य काल है। जो वास्तविक नहीं है। इस अवास्तविक अर्थात् व्यावहारिक काल के दो भेद हैं—एक स्थूल तथा दूसरा सूक्ष्म। स्थूल को मूर्त तथा सूक्ष्म को अमूर्त भी कहा जाता है। श्वास लेने में जितना समय लगता है उसे तथा उससे अधिक काल को मूर्त तथा उससे छोटे काल को अमूर्त कहा जाता है। प्राण अर्थात् श्वासकाल से छोटे तथा त्रुटि अर्थात् सूई से कमल के एक पत्ते को छेदने में जितना समय लगता है, उसे तथा उससे बड़े काल को अमूर्त कहा जाता है। अत्यन्त संक्षेप में काल का यही स्वरूप है।

सृष्टि

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, काल अनादि-अनन्त निरन्तर प्रवहमान सत्तारूप है। इसी प्रकार आकाश भी अनादि-अनन्त है। काल और आकाश के गर्भ में अनन्त सृष्टियां हो चुकी हैं जिनका लेखाजोखा करना मानव के लिए असम्भव है। वैज्ञानिक जन वर्तमान में भी अनन्त सृष्टियों की कल्पना करते हैं। प्रत्येक सृष्टि को एक-एक ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत समाविष्ट माना जाता है। प्रत्येक ब्रह्माण्ड के केन्द्र में उसका अधिष्ठाता एक सूर्य होता है। हमारे शास्त्रों में बारह सूर्यों का उल्लेख मिलता है। सूर्य अपने ब्रह्माण्ड में अवस्थित सभी पदार्थों का नियन्त्रण करता है। सूर्य भी किसी महासूर्य से नियन्त्रित होता है। इस प्रकार यह परम्परा अनन्त रूप में विद्यमान है। इन सारे ब्रह्माण्डों के मूल में परमशक्ति की कल्पना की जाती है। उस परमशक्ति की धारणा का प्रतिपादन ऋग्वेद के एक मन्त्र में बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है—

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्ष : परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥

—ऋग्वेद सं० १०, १२९; ७

अर्थात्—इस समूची सृष्टि का निर्माण जिससे हुआ, जिसने इसकी बुद्धिपूर्वक रचना की या नहीं, यह बात जो इस जगत का स्वामी अत्युन्नत स्वर्ग में राज्यासन कर रहा है, उसे भी सचमुच ज्ञात हो या ज्ञात न हो ।

सृष्टि का रहस्य कितना गूढ़ है, इसका आकलन इस मन्त्र से हो जाता है । ऋषि का दर्शन है कि संभवतः सृष्टि का सम्पूर्ण रहस्य इसके निर्माता को भी ज्ञात न हो । यद्यपि निर्माता को सम्पूर्ण रहस्य ज्ञात होता है, तथापि ऋषि ने सृष्टि-रहस्यों की अत्यन्त गूढ़ता प्रदर्शित करने के लिए ऐसा कहा है ।

उस परमात्म-शक्ति से अनन्त सृष्टियां वार-बार उत्पन्न होतीं हैं । जव-जव सृष्टि पुरानी हो जाती है और अव्यवस्थित होने लगती है तव-तव वह पुनः उसी परमात्म-शक्ति में लीन हो जाती है । उसे ही प्रलय कहते हैं । सृष्टि से प्रलय तक के समय को कल्प कहा जाता है । इसके विषय में हम आगे विचार करेंगे । एक कल्प तक सृष्टि सुप्तावस्था में रहने के वाद पहले की तरह पुनः उत्पन्न हो जाती है । इस सम्वन्ध में ऋग्वेद का अघमर्षण-सूक्त वड़ा ही महत्त्वपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करता है :—

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ।।
समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी ।।
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथ्वीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।।

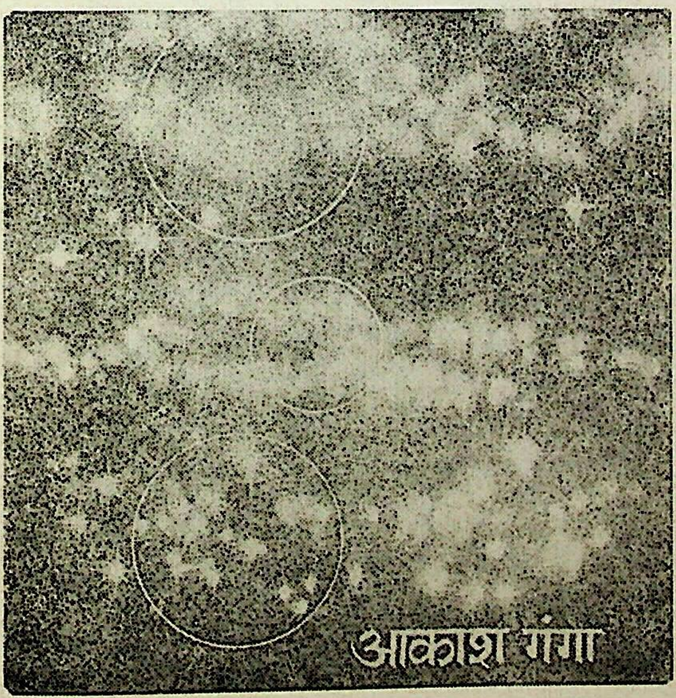
—ऋग्वेद सं० १०,१९०, १—३

संक्षेप में इसका अभिप्राय है कि संवत्सर आदि कालखण्ड, पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग, सूर्य-चन्द्र आदि पदार्थों को विधाता ने सृष्टि के आदि में पूर्ववर्ती सृष्टि के समान ही निर्मित किया था । इससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक सृष्टि का स्वरूप मूल-रूप में समान ही रहता है ।

इस प्रकार सृष्टि-चक्र का अनन्त प्रवाह निरन्तर चलता रहता है । हम उन सभी सृष्टियों का ज्ञान नहीं कर सकते । उन्हें जानने का कोई प्रयोजन भी नहीं है । क्योंकि वर्तमान मानव-समाज वर्तमान सृष्टि तक ही रहने वाला है । अतः हम यहां वर्तमान सृष्टि की ही गणना पर विचार करेंगे । भारत की सम्पूर्ण कालगणना सौरमण्डल के ग्रहों पर आधारित है । अतः हम सर्वप्रथम सौरमण्डल का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे ।

सौरमण्डल

भारत के प्राचीन मनीषियों ने जिसे ब्रह्माण्ड शब्द से अभिहित किया है, उसे ही आधुनिक वैज्ञानिक सौरमण्डल कहते हैं। विद्वानों का कहना है कि वर्तमान सौरमण्डल आकाशगंगा से उत्पन्न हुआ है। आकाशगंगा में और भी अनेक सौरमण्डल हैं। उनमें निर्माण और विखण्डन की प्रक्रिया सतत चलती रहती है। जब तक सौरमण्डल के पिण्ड अत्यधिक गर्मी के कारण गैस के रूप में रहते हैं, तब तक उनमें अपना प्रकाश भी रहता है। धीरे-धीरे उनकी गर्मी कम हो जाने पर ठोस रूप में वे प्रकाशहीन अवस्था में आ जाते हैं। अत्यन्त प्राचीन काल में वर्तमान सूर्य से भी महान किन्हीं दो महासूर्यों में निकटता के कारण गुरुत्वाकर्षण का परस्पर संघर्ष हुआ। इस संघर्ष के कारण महासूर्य के कई खण्ड हो गये। इनमें मुख्य और बड़े भाग के गुरुत्वाकर्षण की प्रबलता के कारण छोटे खण्ड बड़े खण्ड की परिक्रमा करने लगे। धीरे-धीरे ठंडे हो कर वे ठोस और प्रकाशहीन हो गये। वे ही वर्तमान ग्रहों के रूप में अवस्थित हैं।



वाद में गुरुत्वाकर्षणों के संघर्षों के कारण ग्रहों के भी खण्ड पृथक् होते गये, और अपने मुख्य भाग की परिक्रमा करने लगे। वही खण्ड अपने-अपने ग्रह के उपग्रह वन गये।

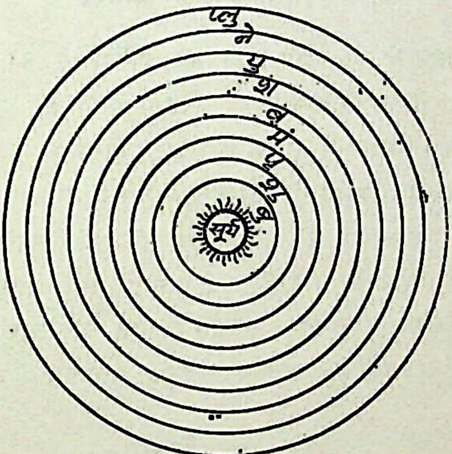
इस प्रकार सौरमण्डल में विखण्डन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रही। अनन्त संख्या में तारे और नक्षत्र वनते चले गये। इनके आकार एवं प्रकाश की मात्रा में अनन्त विभिन्नतायें हैं। इनके अन्तर्गत अवस्थित विभिन्न भौतिक पदार्थों के कारण इनके प्रकाश के रंग भी भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं। वैज्ञानिकों ने स्वस्थ आंखों से देखने योग्य तारों को सात श्रेणियों में विभाजित किया है। ऐसे तारों की संख्या आठ हज़ार के लगभग है। इनमें प्रथम श्रेणी में २०, द्वितीय श्रेणी में ५९, तृतीय श्रेणी में १८२, चतुर्थ श्रेणी में ५३०, पंचम श्रेणी में १६००, छठी श्रेणी में ४८०० और शेष सातवीं श्रेणी के तारे हैं। दूरवीक्षण यन्त्रों से देखने योग्य तारों को १७ श्रेणियों में विभाजित किया गया है। अब तक देखे गये तारों की संख्या लगभग ७ अरव निश्चित की गयी है। वास्तव में तारों की संख्या अनन्त है। उन्हें देखने के यन्त्र जितने शक्तिशाली होंगे उतनी ही अधिक संख्या में तारे देखे जा सकेंगे।

ब्रह्माण्ड का अध्ययन ज्योतिषशास्त्र का विषय है। पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी तक इस विषय में भारतवर्ष ही विश्वगुरु था। परन्तु बाद में कोपरनिक्स। (१४७२ ई.) गैलीलियो। (१५६४ ई०) और न्यूटन (१६४२ ई०) आदि पाश्चात्य विद्वानों के प्रयास से पश्चिमी देश ही इस विषय के गुरु वन गये। आधुनिक काल में आइन्सटीन आदि वैज्ञानिकों ने तो इसे चरम सीमा पर पहुंचा दिया है। ज्योतिष का ज्ञान जितना अधिक होता है, काल की गणना उतनी ही सूक्ष्मता से हो पाती है। आज सैकेण्ड के भी कई हज़ारवें भाग का ज्ञान काफी सूक्ष्मता से किया जा सकता है। इलेक्ट्रोनिक्स के विकास ने तो इस विषय में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त करायी है। आज इस विषय का इतना विस्तार हो गया है कि इसे अनेक विभागों में अध्ययन किया जाता है। हमारे जीवन के व्यवहारों में जितनी सूक्ष्मता से कालनिर्धारण की आवश्यकता थी, उससे कुछ पग अधिक ही सूक्ष्मता से काल-गणना का ज्ञान भारत में ईस्वी सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व ही हो चुका था। आज भी वैज्ञानिक जन भारत की ब्रह्माण्ड सम्वन्धी धारणाओं का नित्यप्रति समर्थन करते जा रहे हैं। इससे यह अनुमान होता है कि यदि भारत में इस विषय के प्रायोगिक अध्ययन की परम्परा वनी रहती तो भारत आज भी विश्वगुरु वना रहता।

अस्तु, सूर्य हमारे सौरमण्डल का अधिष्ठाता है। वही इस ब्रह्माण्ड की केन्द्रीय शक्ति का निधान है। इस तथ्य को प्रकट करते हुए ऋग्वेद के ऋषि ने सर्वप्रथम कहा था—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।

— ऋग्वेद सं. १, ११५, १



सौरमण्डल

अर्थात्—"यह सूर्य सम्पूर्ण चर और अचर जगत् की आत्मा है।" सौरमण्डल के सभी ग्रह-नक्षत्र-पिण्डों का भ्रमण इसी के द्वारा संचालित होता है। सम्पूर्ण सौरमण्डल का वही केन्द्र है। वेद का अध्ययन शिथिल होने के बाद भारत एवं पश्चिमी देशों के विद्वान् पृथ्वी को ही ब्रह्माण्ड का केन्द्र मानने लगे थे। परन्तु भारत के आर्यभट्ट-प्रथम (शक सं० ४२१) ने इस धारणा को अस्वीकृत कर दिया था। पहले यह माना जाता था कि ब्रह्माण्ड के केन्द्र में पृथ्वी है, तथा इसके ऊपर चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, मंगल, गुरु, शनि नक्षत्र क्रमशः इसकी परिक्रमा करते हैं। परन्तु आधुनिक विद्वान् मानते हैं कि सूर्य ब्रह्माण्ड के केन्द्र में है और क्रमशः बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि, यूरेनस, नेपचून और प्लूटो सूर्य की अण्डाकार परिक्रमा करते हैं। ये ही नौ ग्रह हैं। चन्द्र उपग्रह के रूप में पृथ्वी की परिक्रमा करता है। भारत के प्राचीन मत में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि, ये सात ग्रह गणना में माने जाते हैं। राहु और केतु ग्रह पिण्ड नहीं हैं। ये सूर्य और चन्द्र की कक्षाओं के सम्पात अर्थात् योगस्थान हैं।

सूर्य और चन्द्र के ग्रहणों की गणना में इनका उपयोग होता है । फलित-ज्योतिष में इनका भी अन्य ग्रहों के समान फल होता है । इसलिए इन्हें भी ग्रह मानते हैं। इस प्रकार प्राचीन भारतीय मत में भी नौ ग्रह हैं । ये सभी ग्रह-नक्षत्र आकाश मण्डल में अण्डाकार दीर्घ वृत्त में घूमते हैं ।

कालगणना का आधार

भारतीय कालमानों की गणना ग्रहों की गतियों से की जाती है। यद्यपि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी उसकी अण्डाकार परिक्रमा करती है, परन्तु हम पृथ्वी के निवासी होने के कारण समझने में सुविधा के लिए साधारण भाषा में पृथ्वी की गति को सूर्य की गति कहते हैं । अर्थात् सूर्य को केन्द्र मान कर उपलब्ध पृथ्वी की गति को पृथ्वी-कैन्द्रिक दृष्टि से बदल लेते हैं। इसे ही सूर्य की गति कहते हैं । इस प्रकार हमारी कालगणना व्यावहारिक रूप में सूर्य, चन्द्र, और वृहस्पति पर आधारित है। कालगणना की प्रक्रिया ठीक ढंग से समझने के लिए पहले उनकी सिद्ध परिभाषाओं को जान लेना परम आवश्यक है। इसलिए उन्हें यहां प्रस्तुत करते हैं ।

काल-विभाग

सूई से कमल के एक पत्ते को छेदने का समय त्रुटि कहलाता है ।

१०० त्रुटि=१ तत्पर	१० गुरु अक्षर=१ असु	६० सैकेण्ड=१ मिनट
३० तत्पर=१ निमेष	६ असु =१ पल	६० मिनट=१ घण्टा होरा (Hour)
१८ निमेष=१ काष्ठा	६० पल =१ घटी	
३० काष्ठा=१ कला	६०घटी =१ अहोरात्र	२४ घण्टा =१ अहोरात्र
३० कला =१ घटी	२१६०० असु=१ अहोरात्र	४ सैकेण्ड=१ असु
२ घटी =१ मुहूर्त	४५ निमेष =१ असु	१ सैकेण्ड=३३७५० त्रुटि
३० मुहूर्त =१ अहोरात्र	१ गुरु अक्षर =१ विपल	
	६० विपल =१ पल	१ त्रुटि =सैकेण्ड का ३३७५०वां भाग

७ अहोरात्र = १ सप्ताह । १५ अहोरात्र = १ पक्ष । २ पक्ष = १ मास ।

२ मास = १ ऋतु । ३ ऋतु = १ अयन । २ अयन = १ वर्ष ।

३६० वर्ष = १ दिव्यवर्ष । १२०० दिव्यवर्ष = ४,३२,००० वर्ष = १ कलियुग ।

२ कलियुग = १ द्वापर युग । ३ कलियुग = १ त्रेतायुग ।

४ कलियुग = १ सत्ययुग । १० कलियुग = ४३,२०,००० वर्ष = १ महायुग ।

७१ महायुग = १ मनुकाल । १ मनुसन्धि = १ सत्ययुग ।

१५ मनुसन्धि = ६ महायुग । १४ मनु + १५ मनुसन्धि = १००० महायुग = १ कल्प । १ कल्प = १ ब्रह्मदिन । २ कल्प = ब्रह्मा का अहोरात्र । ब्रह्मायु = १०० वर्ष ।

पुराणों में इससे भी बड़े विष्णुकाल और रुद्रकाल का उल्लेख है। परन्तु उसका यहां कोई प्रयोजन नहीं है । हमें तो केवल एक कल्प से प्रयोजन है । क्योंकि ब्रह्मा प्रत्येक दिन कल्प के प्रारम्भ में सृष्टि करते हैं, और अन्त में प्रलय कर देते हैं ।

आर्यभट्ट-प्रथम के मत में ४३,२०,००० वर्ष के महायुग के समान चार भाग क्रमश: सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग होते हैं । इनके मत में ४ चरणों का महायुग होता है । ७२ महायुगों का एक मनु और १५ मनु का एक कल्प होता है । इसमें मनुसन्धि नहीं होती । इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म और लम्बे से लम्बे कालमान का विकास भारत में बहुत पहले ही कर लिया गया था ।

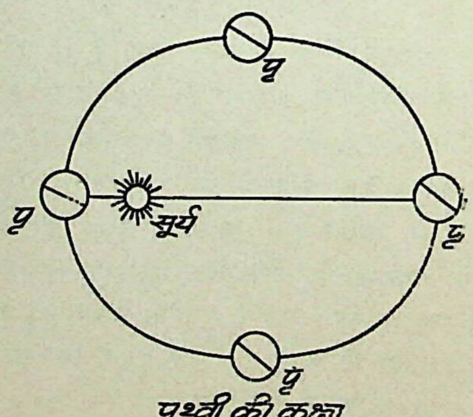
दैनिक भूभ्रम अथवा नाक्षत्र दिन

प्रत्येक वृत्त ३६० अंशों में विभाजित होता है । प्रत्येक अंश ६० कलाओं में तथा प्रत्येक कला ६० विकलाओं में विभाजित माना जाता है । इस प्रकार प्रत्येक वृत्त ३६०×६०×६० = २१,६०० कलाओं में विभाजित होता है । वृत्त को २१,६०० विभागों में विभाजित करने का एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक कारण है । इसका सम्बन्ध पृथ्वी की दैनिक गति से है। एक स्वस्थ और जितेन्द्रिय पुरुष जितने समय में साधारण रूप से श्वास-प्रक्रिया पूरी करता है अर्थात् श्वास खींचता और छोड़ता है, उतने समय को एक असु कहा जाता है । प्रयोगों से यह सिद्ध है कि स्वस्थ पुरुप की श्वास-प्रक्रिया प्राकृतिक रूप में चलती रहती है । एक दिन-रात में एक स्वस्थ पुरुप की श्वास प्रक्रिया २१,६०० वार में पूरी होती है ।

हम निरीक्षण करने पर देखते हैं कि प्रत्येक ग्रह-नक्षत्र एक विशेष रेखा में पश्चिम दिशा की ओर सरकता रहता है । इसका कारण है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर विषुववृत्त

की दिशा में पूर्व की ओर घूमती हुई २१,६०० असुकाल में एक पूर्ण भ्रमण करती है। अर्थात् पृथ्वी की धुरी ध्रुव की ओर है। इस कारण आकाशीय ध्रुव के निकट का तारा स्थिर सा दृष्टिगत होता है। यह सिद्धान्त है कि किसी भ्रमणशील गोल का जो बिन्दु अपने ध्रुव से जितना दूर होगा, वह उतने ही व्यासार्ध-चाप पर भ्रमण करेगा। इस प्रकार विषुववृत्त का प्रत्येक विन्दु ध्रुव से ९० अंश के चाप पर भ्रमण करता रहता है। अतः इसी वृत्त में पृथ्वी की दैनिक गति का परमत्व होता है। यह सदा एक समान रहता है। अर्थात् विषुववृत्त में स्थित देशों में दिन-रात का परिमाण सदा एकसा रहता है और पृथ्वी की गति का वह स्थायी परिमाण विषुववृत्त में एक असु में एक कला है। अन्य वृत्तों में जो गति होती है उसको विषुववृत्त में अनुपात के द्वारा ज्ञात किया जाता है। कालगणना की समग्र पद्धतियों को विषुववृत्त में ही अंकित किया जाता है। अर्थात् पृथ्वी पर की समस्त कालगणना का आधार पृथ्वी की दैनिक गति है। प्राचीन आचार्यों के मत में पृथ्वी स्थिर और नक्षत्र चल माने जाते थे। अतः वे पृथ्वी की दैनिक गति को भूभ्रम अथवा नक्षत्र-दिन कहते थे। आर्यभट्ट-प्रथम ने पृथ्वी को चल मानने के कारण इसे आज की तरह भूभ्रम कहा है। सुविधा के लिए आज भी लोग इसे नक्षत्र-दिन ही कहते हैं; परन्तु परमार्थ में उनका भाव भूभ्रम का ही होता है।

पृथ्वी की वार्षिक गति



पृथ्वी की कक्षा

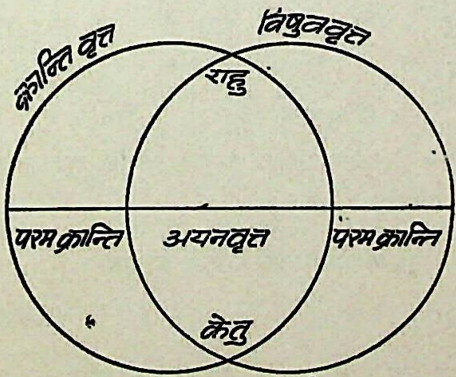
पृथ्वी अपनी धुरी पर एक दिन-रात में एक बार भ्रमण करती हुई लट्टू की तरह अपना केन्द्रस्थान भी पश्चिम दिशा में वदलती रहती है। इस प्रकार सतत

अपना केन्द्र स्थान बदलती हुई पृथ्वी जिस मार्ग से अपना भ्रमण पूरा करती है — उस मार्ग को पृथ्वी की कक्षा कहते हैं। पृथ्वी की कक्षा का आकार दीर्घवृत्त है। इस दीर्घवृत्त के एक केन्द्र में सूर्य है। इसका दूसरा केन्द्र खाली है। इसलिए पृथ्वी सूर्य के कभी निकट और कभी दूर हो जाती है। अपनी कक्षा पर पृथ्वी के एक चक्र पूरा करने को ही वर्षकाल कहा जाता है। इसमें कई जटिलतायें हैं; जिन्हें हम आगे वर्णन करेंगे।

प्राचीन काल में सूर्य को चल मानने के कारण सूर्य की कक्षा को क्रान्ति-वृत्त कहा जाता था। परन्तु आजकल पृथ्वी की कक्षा को ही क्रान्तिवृत्त कहा जाता है। पृथ्वी-कैन्द्रिक और सूर्य-कैन्द्रिक, दोनों ही क्रान्तिवृत्त एक ही धरातल में रहते हैं।

सूर्यक्रान्ति एवं अयनवृत्त

पृथ्वी विषुववृत्त की दिशा में पूर्व की ओर दैनिक भ्रमण करती है। यह पीछे बतलाया गया है। जिस वृत्त पर पृथ्वी की दैनिकगति तथा वार्षिक चक्रभ्रमण होते हैं, वह क्रान्तिवृत्त अथवा पृथ्वी की कक्षा है। वह पृथ्वी की धुरी पर सीधी खड़ी न होकर २३ अंश २८ कला झुकी हुई है। अर्थात् विषुववृत्त तथा क्रान्तिवृत्त के धरातलों के मध्य २३ अंश २८ कला का कोण है। इस प्रकार क्रान्तिवृत्त का पृष्ठीय केन्द्र भी विषुववृत्त के पृष्ठीयकेन्द्र अर्थात् ध्रुव-स्थान से २३ अंश २८ कला दूर है। इसे



अयन तथा राहु केतु

कदम्ब स्थान कहा जाता है। ध्रुव-स्थान और कदम्ब-स्थान में गया हुआ एक बड़ा वृत्त करने पर उस वृत्त में विषुववृत्त और क्रान्तिवृत्त का जो अन्तर है वह भी २३°/२८′

होता है। इस अन्तर को सूर्य की परमक्रान्ति (अर्थात् उत्तर-दक्षिण का झुकाव) कहा जाता है। इस वृत्त को अयनवृत्त कहा जाता है, क्योंकि सूर्य का उत्तरायण-दक्षिणायान इसी से होता है। सूर्य विषुववृत्त से २३°/२८′ तक उत्तर-दक्षिण आता-जाता रहता है। अतः यह घटता-बढ़ता रहता है। सूर्य विषुववृत्त से जिस दिन जितना दूर होता है, उस अन्तर को उस दिन की क्रान्ति कहा जाता है।

ग्रह-उपग्रहों की गति

सभी ग्रह दीर्घवृत्त कक्षा में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। उपग्रह चन्द्र पृथ्वी की परिक्रमा करता है। सभी ग्रह तथा चन्द्र अपनी कक्षा पर पूर्व दिशा में दैनिक भ्रमण करते हैं। उनकी यह गति आँख से नहीं दिखाई देती। यह तो प्रतिदिन उन्हें निश्चित समय पर देखने पर ही ज्ञात होता है। उनकी यह गति पृथ्वी के दैनिक भ्रमण के कारण प्रतिदिन ग्रह-नक्षत्रों की पश्चिम की ओर होने वाली गति से भिन्न है। ग्रह-उपग्रहों की गति कहने से यही गति समझी जाती है।

सम्पूर्ण आकाश का २७ नक्षत्रों में विभाजन

भारत के प्राचीन मनीषियों ने निरीक्षण-परीक्षणों से यह जान लिया था कि चन्द्रमा पृथ्वी के सर्वाधिक निकट है। पृथ्वी के चराचर पदार्थों पर चन्द्र की कलाओं का सभी ग्रहों से अधिक प्रभाव पड़ता है। यह बात प्रयोगों द्वारा आज भी उतनी ही सत्य सिद्ध होती है। निरन्तर निरीक्षण करने पर उन्होंने देखा कि चन्द्रमा आज जिस तारे के निकट से गुजरता है २७ वें दिन के बाद वह पुनः उसी तारे के निकट से गुजरता है। इससे उन्होंने कल्पना की कि चन्द्र नक्षत्रों (तारों) की गोद में बैठा है। देखिए ऋग्वेद का यह मन्त्र :—

अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः।

—ऋग्वेदसंहिता १०, ८५, २

आगे चल कर उन्होंने चन्द्रमा को नक्षत्रों का अधिपति माना। चूंकि चन्द्रमा २७ दिनों में सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल को पार कर लेता है, इसलिए सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल को २७ भागों में विभक्त कर आठ-आठ सौ कला आकाश-विभाग को एक-एक नक्षत्र के विभाग के रूप में निश्चित किया गया। चन्द्रमा का परम शर ५ अंश ९ कला

है। अतः चन्द्रमा क्रान्तिवृत्त से ५°/९′ उत्तर-दक्षिण के अन्दर ही भ्रमण करता है। परम-क्रान्ति २३°/२८′ है। अतः चन्द्रमा विषुववृत्त से ५°/९′+२३°/२८′=२८°/३७′ अधिकतम उत्तर-दक्षिण के मध्य ही भ्रमण करता है। अर्थात् विषुववृत्त से २८°/३७′ उत्तर-दक्षिण के मध्य आकाश के निकट जो तारे हैं उन्हीं से चन्द्रमा की निकटता सम्भव है। अर्थात् चन्द्रमार्ग में आकाश के इतने ही भाग में स्थित तारे आ सकते हैं। चूंकि विषुववृत्त सदा स्थिर नहीं है। उसका पृष्ठीय केन्द्र अर्थात् ध्रुवस्थान क्रान्तिवृत्त के पृष्ठीयकेन्द्र अर्थात् कदम्वस्थान की परिक्रमा २३°/२८′ के व्यासार्द्धवृत्त में पश्चिम की ओर चलते हुए २६००० वर्षों में पूरी करता है। अतः आकाशीय कदम्बस्थान ही ध्रुवस्थान की अपेक्षा अधिक स्थिर है। इस वात को भारत के प्राचीन आचार्यों ने वहुत पूर्व समझ लिया था। अतः उन्होंने आकाश का नक्षत्रविभाग करने के लिए जो २७ वप्र वनाए उनका प्रारम्भ विन्दु कदम्वस्थान में निश्चित किया। अर्थात् नक्षत्रमण्डल के मध्य में क्रान्ति वृत्त को माना। अतः प्रत्येक नक्षत्र विभाग में विषुववृत्त से २८°/३७′ उत्तर-दक्षिण के मध्य आकाश के निकट जो मुख्य-मुख्य तारे दृष्टिगत हुए और उनसे जो आकृतियां प्रतीत हुईं, उन्हीं आकृतियों के शब्द लेकर उन्होंने अश्विनी, भरणी आदि २७ नक्षत्रों के नाम निश्चित कर दिये। इस प्रकार प्रत्येक नक्षत्र के मुख्य तारों की संख्या और उसकी आकृति निश्चित है। इन बातों का उल्लेख वेद में ही उपलब्ध होता है। इससे भारत में इस विद्या की प्राचीनता का अनुमान किया जा सकता है। नक्षत्रों की संख्या २७ ही क्यों है? इसका उत्तर उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है। अर्थात् २७ दिनों में ही चन्द्रमा का चक्र पूरा होने के कारण २७ नक्षत्र माने गए हैं। अभिजित्-नक्षत्र विषुववृत्त से वहुत दूर ६१°/४२′ उत्तर में है। अर्थात् वह चन्द्रमार्ग से वहुत वाहर है। अतः प्रारम्भ में उसे नक्षत्रों में परिगणित नहीं किया गया। परन्तु उसकी देदीप्यमानता को देखते हुए परवर्ती काल में उसे भी उत्तराषाढा और श्रवण नक्षत्रों के वीच में २८वें नक्षत्र के रूप में मान्यता दे दी गई है। अभिजित् का उल्लेख भी वेद में मिलता है। अतः इसकी गणना भी बहुत प्राचीन है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि २८ नक्षत्रों की गणना चन्द्रमा की गति के आधार पर भारत में ही अत्यन्त प्राचीनकाल में आविष्कृत हुई और इसमें विदेशी तत्व होने का कोई संकेत उपलब्ध न होने से यह विदेशों में आविष्कृत होकर भारत में नहीं आयी। इसके वाद भी यदि कोई खाल्डिया से नक्षत्र-गणना भारत में आने का समर्थन करता है, तो यह उसकी शालीनता नहीं मानी जायेगी।

नक्षत्र-चक्र का प्रारम्भ

प्राचीन समय में नक्षत्रों की दृश्यगणना चलती थी । विभागीय नक्षत्र-गणना बाद में प्रचलित हुई । पीछे अयनवृत्त का परिचय दिया गया है । इसी प्रकार विषुववृत्त और क्रान्तिवृत्त का परिचय भी दिया गया है। इन दोनों वृत्तों के १८० अंश के अन्तर से दो योग होते हैं । ज्योतिष में योग को संपात भी कहा जाता है। दोनों वृत्तों का जो प्रथम संपात है उसे वसन्त-सम्पात कहा जाता है । द्वितीय संपात को शरत्संपात कहा जाता है। प्रथम संपात में सूर्य के आने पर वसन्तारम्भ और शरतसंपात में उसके आने पर शरद् ऋतु का प्रारम्भ होता है।

इसके पूर्व बताया गया है कि ध्रुवस्थान कदम्बस्थान की उल्टी अर्थात् पश्चिमाभिमुख परिक्रमा करता है। इस कारण वसन्तसम्पात प्रतिवर्ष ५०२ विकला पश्चिम की ओर खिसकता जाता है। प्राचीन समय में धनिष्ठा से उत्तरायण होता था ; और नक्षत्रगणना भी धनिष्ठा से होती थी । बाद में वसन्त-सम्पात के चलने के कारण यह बदलती रही । विभिन्न समय में यह गणना मृगशिरा, रोहिणी, कृत्तिका आदि से भी होती रही । इस प्रकार इसे चलगणना अथवा सायनगणना कहा जाता है । सृष्ट्यादि में वसन्तसम्पात अश्विनी के आरम्भ में था। इसलिए स्थिर गणना में नक्षत्रचक्र का आरम्भ अश्विनी से किया जाता है। इसे निरयणगणना भी कहा जाता है । वसन्त-सम्पात अश्विनी से जितना पीछे होता है उसे अयनांश कहा जाता है। वर्तमान शक सं० १९०५ के प्रारम्भ में अयनांश २३°/३७′/६″ है। अर्थात् अश्विन्यारम्भ से वसन्तसम्पात इतना पश्चिम में है।

स्थिर गणना के नक्षत्रों के नाम और क्रम इस प्रकार हैं—

१. अश्विनी। २. भरणी। ३. कृत्तिका ४. रोहिणी। ५. मृगशिरा। ६. आर्द्रा। ७. पुनर्वसु। ८. पुष्य। ९. आश्लेषा। १०. मघा। ११. पूर्वफल्गुनी। १२. उत्तरफल्गुनी। १३. हस्त। १४. चित्रा। १५. स्वाति। १६. विशाखा। १७. अनुराधा। १८. ज्येष्ठा। १९. मूल। २०. पूर्वाषाढ। २१. उत्तराषाढ। २२. श्रवण। २३. धनिष्ठा। २४. शतभिषा। २५ पूर्वभाद्र। २६. उत्तरभाद्र। २७. रेवती। २१ वें और २२ वें नक्षत्रों के मध्य में उत्तराषाढ के अन्त्य चतुर्थांश और श्रवण के प्रथम पञ्चदशांश को मिला कर अभिजित् नक्षत्र

माना जाता है। इस प्रकार कुछ आचार्य २८ नक्षत्र मानते हैं, परन्तु विभागीय नक्षत्र २७ ही हैं।

नक्षत्रों की तारासंख्या, आकृति, कालांश, योगतारा और उनके भोग और शर

पीछे बतलाया गया है कि नक्षत्रमण्डल में प्रत्येक नक्षत्र-विभाग में जो मुख्य-मुख्य तारे हैं ; उनसे बनी आकृति पर ही नक्षत्रों के नाम रखे गये हैं। तारों की प्रमुखता उनकी रश्मि की कमी-बेशी पर निर्भर करती है। किस नक्षत्र में कितने प्रमुख तारे हैं ; इसमें मतभेद है। यहां मुहूर्तचिन्तामणि का मत नीचे के चक्र में बतलाया गया है। सूर्य से न्यूनतम जितने अंश आगे-पीछे रहने पर ये तारे दृश्य हो सकते हैं, उसे कालांश कहा जाता है। उनकी आकृति का निर्देश भी चक्र में है। प्रत्येक नक्षत्र-विभाग में जो सबसे अधिक प्रकाशयुक्त तारा होता है, उसे योगतारा कहा जाता है। किस नक्षत्र का योगतारा किस स्थान पर है, यह जानने के लिए योगतारा पर कदम्ब स्थान से एक बड़े वृत्त का चाप किया जाता है, जिसे आगे बढ़ा कर क्रान्तिवृत्त तक लगा दिया जाता है। उस कदम्ब-स्थानीय चाप में कदम्बस्थान से योगतारा तक जितना अंश-कलादि अन्तर होता है, उसे उस योगतारा का शर कहा जाता है। योगतारा यदि क्रान्तिवृत्त से उत्तर हो तो उत्तरशर तथा यदि वह क्रान्तिवृत्त से दक्षिण हो तो दक्षिणशर कहा जाता है। यह भी नीचे के चक्र में दिया गया है। योगतारा पर किया गया कदम्बस्थानीय चाप क्रान्तिवृत्त में जिस बिन्दु में लगता है, अश्विनी के प्रारम्भ-बिन्दु से उस बिन्दु तक जितना अंश-कलादि अन्तर होता है, उसे उस योगतारा का भोग कहा जाता है। यह भी निम्नलिखित चक्र में बतलाया गया है। इस विधि से नापे गये भोग और शर को कदम्बसूत्रीय कहा जाता है। यह सदा स्थिर रहता है।

कुछ लोग उपर्युक्त विधि से ही ध्रुवसूत्रीय भोग और शर का मापन करते हैं। यह तात्कालिक रूप में अधिक उपयोगी होता है। परन्तु सतत अयनांश बदलते रहने के कारण इसमें अन्तर पड़ता रहता है। इसलिए यह स्थायी नहीं होता, और ज्योतिषी लोग इसका आदर भी नहीं करते। नक्षत्रों का योगतारा मानने में भी आचार्यों में मतभेद हैं। इसलिए उनके भोग और शर के मानों में भी मतभेद दृष्टिगोचर होता है। यह चक्र केतकी-ग्रहगणित के अनुसार दिया गया है।

कोष्ठक संख्या—1 (क)—नक्षत्रों की तारासंख्या, आकृति, कालांश और योगतारा के कदम्बसत्रीय अंशादि भोग-शर

नक्षत्रनाम	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	श्लेषा	मघा	पूर्वाफाल्गुनी	उत्तराफाल्गुनी	हस्त	चित्रा
तारा संख्या	३	३	६	५	३	१	४	३	५	५	२	२	५	१
कालांश	१४	२१	१५	१४	२१	१५	१३	२१	१५	१४	१४	१४	१४	६३
आकृति	अश्वमुख	योनि	छुरा	गाड़ी	मृग	मणि	गृह	बाण	चक्र	भवन	मंच	शय्या	हाथ	मोती
भोगांश	१० ६	२४ २४	३६ ६	४५ ५४	५९ ५४	६४ ५४	८९ २४	१०४ ५४	१०९ ४८	१२६ ०	१३९ ३६	१४७ ४८	१६९ ३६	१८० ०
शरांश	८ ३० उ.	१० २४ उ.	४ ० उ.	५ ३० द.	१३ २४ द.	१६ ० द.	६ ४२ उ.	० ६ उ.	५ ६ द.	० ३० उ.	९ ४२ उ.	१२ १८ उ.	१२ १२ द.	२ ० द.

कोष्ठक संख्या—1 (ख)

नक्षत्रनाम	स्वाति	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा	मूल	पूर्वाषाढ	उत्तराषाढ	अभिजित्	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषक्	पूर्वभाद्र	उत्तरभाद्र	रेवती
तारासंख्या	१	४	४	३	११	२	२	३	३	४	१००	२	२	३२
कालांश	१३	१४	१५	१३	१५	१५	१५	१३	१४	१४	१७	१७	१७	१७
आकृति	मुंगा	तोरण	चावल	कुण्डल	सिंहपुच्छ	हाथीदांत	मंच	त्रिकोण	वामन	मृदङ्ग	वृत्त	मंच	युगल	माला
भोगांश	१८० २४	२०७ १२	२१८ ४२	२२५ ५४	२३९ ०	२५० ४२	२५८ ४८	२६१ ५	२७७ ५४	२९३ ५	३१७ ४२	३३० ४२	३५० ३०	३५९ १८
शरांश	३० ४८ उ.	१ ४८ उ.	२ ० उ.	४ ३६ द.	६ ३६ द.	६ ३० द.	३ ३० द.	६१ ४२ उ.	२९ १८ उ.	३३ ० उ.	० २४ द.	१९ २४ उ.	२५ ४२ उ.	३ ६ द.

यद्यपि २७-नक्षत्रों का कलामान समान रूप से ८०० कला है, तथापि चन्द्रगति की न्यूनाधिकता के कारण नक्षत्रों का घट्यात्मकमान अधिक अथवा न्यून हो जाता है। अर्थात् चन्द्रगति अधिक होने से घटीमान कम तथा कमगति होने से घटीमान अधिक हो जाता है।

राशि

जिस प्रकार आकाश-मण्डल के २७ नक्षत्र-विभाग हैं, उसी प्रकार १२ राशि-विभाग हैं। राशि-विभाग में भी मुख्य-मुख्य तारों से बनीं आकृतियों के आधार पर राशियों के नाम रखे गये हैं। २७ नक्षत्रों को १२ भागों में विभाजित करने से सवा दो नक्षत्रों की एक राशि बनती है। अथवा २७ नक्षत्रों को चार-चार भागों में विभाजित करने से कुल १०८ चरण या भाग बनते हैं। इस प्रकार नौ-नौ चरणों की एक-एक राशि होती है। राशियों के नाम ये हैं :– १. मेष। २. वृष। ३. मिथुन। ४. कर्क। ५. सिंह। ६. कन्या। ७. तुला। ८. वृश्चिक। ९. धनु। १०. मकर। ११. कुम्भ। १२. मीन। राशि-गणना की अपेक्षा नक्षत्र-गणना अधिक प्राचीन है।

यहां तक हमने नक्षत्रों का विचार किया अब हम ग्रहों का विचार करेंगे।

सौर पिण्डों का नामकरण

सूर्य की आकर्षण-शक्ति की सीमा में जितने ग्रह-नक्षत्र हैं, उन्हें सामूहिक-रूप से सौर मण्डल कहा जाता है। सृष्ट्यादि से ही सौरमण्डल के विभिन्न पिण्डों के विषय में मानव-समाज अनुसन्धान करता रहा है। समय-समय पर जिन-जिन ऋषि-महर्षियों ने जिन-जिन ग्रहपिण्डों के विषय में अनुसन्धान कर उनकी गति आदि विशेषताओं का ज्ञान किया, उन-उन ग्रह-पिण्डों का नाम उन्हीं उन्हीं ऋषियों के नाम पर रखा गया। इस प्रकार सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहों के विषय में सूर्य-चन्द्र आदि नामक व्यक्तियों ने सर्वप्रथम अनुसन्धान किया था, ऐसा मानना चाहिए। इसीलिए वेद-पुराणों में सूर्य-चन्द्र आदि के जो आख्यान दिए गए हैं, वे उन व्यक्तियों के आख्यान हैं न कि उन ग्रहोपग्रहों के। यत्र-तत्र प्रतीकात्मक आख्यान उपलब्ध होते हैं। ऐसे आख्यान उन-उन ग्रहोपग्रहों की विशेषताओं को रोचक कथा-शैली में प्रतिपादित करने के उद्देश्य से रचे गए हैं।

भारत के ज्योतिष-ग्रन्थों में सौरमण्डल के सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु और पृथ्वी का वर्णन उपलब्ध होता है। हम उन्हें यहां एक-एक कर समझेंगे।

सूर्य

वेद-पुराणों में सूर्य को एक ऐसे रथ पर सवार बतलाया गया है, जिसमें सात-सात घोड़े जुते हुए हैं। यह कथन प्रतीकात्मक है। इसका वर्णन हमें वैदिक-ग्रन्थों में

उपलब्ध होता है। वैदिक शब्दों के अर्थ बताने वाले ग्रन्थ निरुक्त के रचयिता यास्क मुनि (७वीं शती ई० पू०) ने ऋग्वेद (१,१६४,१-२) के मन्त्रों की व्याख्या करते हुए निरुक्त (४,२६-२७) में बतलाया है कि सूर्य की रश्मि में सात रंग हैं जिन्हें घोड़ों के रूप में माना जाता है। सूर्य की इन रश्मियों से ही सारी सृष्टि जीवन पाती है। इस लिए सूर्य को सविता अर्थात् उत्पन्न करने वाला कहा जाता है। सूर्य अत्यन्त गर्म प्रकाश पिण्ड है। इसकी ज्वालाओं की लपटें सैंकड़ों किलोमीटर दूर तक जाती हैं। यह हमारी पृथ्वी से हजारों गुणा बड़ा है। सौरमण्डल के समस्त पिण्डों के समूह से भी सूर्य का गोल ६०० गुणा बड़ा है। इसका व्यास १३,८२,४०० कि० मी० है। यह पृथ्वी के व्यास से १०८ गुणा बड़ा है। इसका कलात्मक बिम्बमान ३२ कला है। यह पृथ्वी से १५ करोड़ २० लाख कि० मी० दूर है। इसका प्रकाश ८ मिनट १८ सैकिण्ड में पृथ्वी तक पहुंचता है। सूर्य मध्यम मान से एक मास में एक राशि और १४ दिन में एक नक्षत्र पार करता है। इसकी प्रतिदिन की मध्यम गति ५९ कला 8 विकला और १० प्रतिविकला है। यह हमारी कालगणना का सर्वप्रमुख आधार है। सूर्य अपने पूरे परिवार के साथ अभिजित् तारा की ओर बढ़ रहा है।

बुध

सूर्य और पृथ्वी की कक्षा के मध्य में बुध की कक्षा है। बुध का व्यास ४७८७ कि० मी० है। इसका बिम्बमान ११ विकला है। यह पृथ्वी से ९ करोड़ ४४ लाख कि० मी० दूर है। सूर्य से इसकी दूरी ५,८९,४६३,४७ कि० मी० है। यह सूर्योदय से एक घण्टा पहले और सूर्यास्त से एक घण्टा बाद तक ही दृश्य होता है। यह अपनी धुरी पर २४ घण्टा ५ मिनट में घूम लेता है। अपनी कक्षा पर सूर्य की परिक्रमा करने में इसे ८७ दिन २३ घण्टा १५ मिनट और १६ सैकिण्ड लगता है। सूर्य से आगे-पीछे २७ अंश से अधिक इसका अन्तर नहीं होता है। इसके आगे यह गति बदल लेता है। यह एक राशि २५ दिन में पार कर लेता है। सूर्य से शीघ्रगति होने के कारण यह पूर्व में अस्त और पश्चिम में उदित होता है। वक्रगति होने पर पूर्व में उदित और पश्चिम में अस्त होता है। वक्री होने पर सूर्य से १२ अंश के अन्तर पर तथा मार्गी होने पर १३ अंश के अन्तर पर अस्त हो जाता है। इसके विपरीत इसका उदय होता है। अर्थात् मार्गी होने पर १२ अंश के अन्तर पर तथा वक्री होने पर १३ अंश के अन्तर पर उदित होता है। यह सूर्य से दूसरी राशि में वक्री और बारहवीं राशि में मार्गी होता है। यह ९२ दिन मार्गी और २३ दिन वक्री रहता है। मार्गी होने पर ३७ दिन उदित और ३६ दिन अस्त रहता है। वक्री होने पर ३३ दिन उदित और

१६ दिन अस्त रहता है। बुध का युतिकाल ३ मास २४ दिन १ घटी और १२ पल है। अर्थात् इतनी अवधि के पश्चात् पुन: उसी अवस्था में उदय, अस्त वक्री, और मार्गी की स्थिति में आ जाता है। यह एक वर्ष में तीन बार वक्री होता है। इसकी कक्षा अण्डाकार होने से सूर्य और पृथ्वी से इसकी दूरी घटती-बढ़ती रहती है। यह बहुत कम समय दृश्य होता है तथा आकार में भी बहुत छोटा है। फिर भी प्राचीन ऋषियों ने इसे ग्रह के रूप में पहचान लिया था। जब कि उनके पास कोई दूरवीक्षण यन्त्र भी नहीं था, यह बड़े महत्त्व की बात है।

शुक्र

वैदिक विद्वानों के अनुसार शुक्र का प्राचीन नाम वेन है। इसका अंग्रेज़ी नाम भी वेनस (Venus) है। वर्तमान में यह शुक्र नाम से प्रसिद्ध है। यह भी बुध की तरह सूर्य और पृथ्वी की कक्षा के मध्य में विचरण करता है। बुध की अपेक्षा यह सूर्य और पृथ्वी से अधिक दूर है। सूर्य से इसकी दूरी १० करोड़ ७२ लाख कि० मी० है। इसकी कक्षा अण्डाकार होने से इसकी दूरी घटती-बढ़ती रहती है। इसका व्यास १२,२५६ कि० मी० है। इसका विम्बमान १० विकला है। यह पृथ्वी से ५,४८,८०,००० कि० मी० दूर रहता है। परन्तु कभी-कभी इसकी दूरी ३२ लाख कि० मी० ही रह जाती है। यह भी बुध के समान सूर्यास्त के बाद या सूर्योदय से पूर्व चमकता दिखाई देता है। यह अपनी धुरी पर २३ घण्टा २१ मिनट में पूरा घूम लेता है। सूर्य की परिक्रमा करने में इसे २२४ दिन ४२ घटी २ पल और ४७ विपल का समय लगता है। यह भी सूर्य के आगे-पीछे ४५ अंश से अधिक की दूरी पर नहीं जाता। इसके बाद गति बदल लेता है। पृथ्वी की दृष्टि से यह मध्यम मान से ३६५ दिन १५ घण्टों में द्वादश राशि का भ्रमण कर लेता है। यह एक वर्ष मार्गी और एक वर्ष वक्री रहता है। यह मार्गी अवस्था में ४०७ दिन में तथा वक्री अवस्था में ३२४ दिन में द्वादश राशि पार करता है। यह सूर्य से शीघ्रगति होने के कारण पूर्व में अस्त और पश्चिम में उदित होता है। वक्री अवस्था में यह पूर्व में उदित और पश्चिम में अस्त होता है। यह मार्गी अवस्था में सूर्य से ९ अंश के अन्तर पर और वक्री अवस्था में ८ अंश के अन्तर पर अस्त होता है। मार्गी होने पर यह ७० दिन और वक्री होने पर १० दिन अस्त रहता है। मार्गी अवस्था में यह २५० दिन और वक्री अवस्था में २४८ दिन उदित रहता है। इसकी मार्गी अवस्था ५१० दिन और वक्री अवस्था ४५ दिन रहती है। यह सूर्य से दूसरी राशि पर वक्री और बारहवीं राशि पर शीघ्रगामी

होता है। यह सूर्य से तीसरी और ग्यारहवीं राशि में समगति रहता है। शुक्र का युतिकाल एक वर्ष ७ मास ५ दिन ४ घटी और १२ पल है। अर्थात् इस काल के बाद यह पुनः पूर्व क्रम से वक्री-मार्गी, उदित और अस्त होता है।

पृथ्वी

हम पृथ्वी-ग्रह के निवासी हैं। यह पञ्च-भौतिक पिण्ड है। इसके गर्भ में विविध खनिज पदार्थ हैं। इसके केन्द्र में चुम्बकीय आकर्षण-शक्ति है, जो पृथ्वी से करीब ८० कि० मी० ऊपर तक की चीजों को अपनी ओर खींच लेती है। इसका आकार नारंगी के समान है, जो दक्षिण और उत्तर ध्रुवों पर चपटी तथा विषुवत रेखा पर उभरी हुई है। इसका व्यास लगभग १२६७० कि० मी० है। यह अपनी धुरी पर २३ घण्टे ५६ मिनट और २४ सैकिण्ड में एक चक्कर लगा लेती है। अपनी कक्षा पर सूर्य की परिक्रमा करने में इसे ३६५ दिन ५ घण्टे ४८ मिनट और ५६ सैकेण्ड लगता है। अपनी कक्षा पर इसके परिक्रमा-काल को ही सौर वर्ष कहते हैं। इसके कक्षा-संस्थान का वर्णन पीछे किया जा चुका है।

पृथ्वी के सम्बन्ध में अनेक धारणायें प्राचीनकाल से चली आ रही हैं। पाश्चात्य-विद्वानों का विचार है कि पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति, निराधारता और भ्रमण का ज्ञान करीब चार सौ वर्ष पूर्व यूरोप में हुआ। परन्तु उनकी यह धारणा गलत है। पुराणों में शेषनाग, बलराम अथवा सङ्कर्षण को पृथ्वी का आधार बतलाया गया है। श्रीमद्भागवत तथा गर्गसंहिता आदि पुराणों में स्पष्ट रूप में बलराम को पृथ्वी के मूल अर्थात् केन्द्र में स्थित आकर्षण-शक्ति का प्रतीक कहा गया है। पृथ्वी के भ्रमण की बात वेद के कई मन्त्रों तथा आर्यभट्ट-प्रथम के कथन से भी स्पष्ट सिद्ध होती है। आर्य-भट्ट का कथन है :—

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्॥

—आर्यभट्टीय-गोलपाद—९

अर्थात्-नाव पर चढ़ा हुआ व्यक्ति जैसे किनारे को ही चलता हुआ विपरीत अनुभव करता है; उसी प्रकार नक्षत्र स्थिर हैं, परन्तु हमें चलते हुए प्रतीत होते हैं। वास्तव में पृथ्वी ही घूमती है। इसी प्रकार भास्कराचार्य ने पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति की व्याख्या करते हुए कहा है :—

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या ।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्वपतत्वियं खे ॥

—सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय, भुवनकोश—६

अर्थात्—पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। वह आकाशस्थ चीजों को अपनी ओर खींचती है। हमें वही गिरती हुई प्रतीत होती है।

नान्याधारः स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठति ।

—सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय, भुवनकोश—२

अर्थात्—पृथ्वी का कोई अन्य आधार नहीं है। यह अपनी शक्ति से ही सदा आकाश में स्थित है।

इस प्रकार इस सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों का भ्रम दूर हो जाना चाहिए, यदि वे ऐसा शुद्ध भाव से सोचें।

मंगल

मंगल को भारतीय पुराणों में भूमि का पुत्र कहा गया है। यह इसके पृथ्वी के साथ सादृश्य को बताता है। मंगल पृथ्वी की कक्षा के बाहर सूर्य की परिक्रमा करता है। इसलिए इसे बाह्यग्रह कहा जाता है। मंगल का व्यास ६,५८४ कि० मी० है। इसका कलात्मक विम्बमान 6 विकला है। यह पृथ्वी से १० करोड़ कि० मी० की अधिकतमदूरी और ५ करोड़ ६० लाख कि० मी० की न्यूनतम दूरी पर भ्रमण करता है। यह अपनी धुरी पर २४ घंटा ३६ मिनट और साढ़े २२ सैकेण्ड में एक चक्र पूरा कर लेता है। सूर्य की परिक्रमा करने में इसे ६८६ दिन १७ घण्टे ३० मिनट और ४१ सैकेण्ड का समय लगता है। यही इसका भ्रमणकाल है। इसकी दैनिक मध्यम-गति ३१ कला २६ विकला ३१ प्रतिविकला और ३ प्रति विकला है। वक्री होने पर यह उस राशि को १२७ दिन में और उससे अगली राशि को १५ दिन में पार करता है। जिस राशि पर यह मार्गी होता है उस राशि पर ४५ दिन रहता है। यह सूर्य से १३५ अंश की दूरी पर वक्री हो जाता है। यह सूर्य से १७ अंश की दूरी पर अस्त हो जाता है। यह सूर्य से मन्दगति होने से पूर्व में उदित और पश्चिम में अस्त होता है। स्थूलमान से यह १२० दिन अस्त, ६५८ दिन उदित, ७६ दिन वक्री ७०५ दिन मार्गी तथा १५ दिन अतिचारी रहता है। इसका युतिकाल २ वर्ष १ मास १९ दिन ४ घटी १२ पल है, अर्थात् इतने समय के बाद यह पूर्ववत्

वक्री, मार्गी, उदित और अस्त होता है। यह लगभग १८ मास में एक राशि पार करता है।

वृहस्पति

यह सूर्य को छोड़ कर शेष सभी ग्रहों से आकार में बड़ा है। इसी लिए इसे वृहस्पति तथा गुरु कहा जाता है। इसका व्यास १,४२,७२५ कि० मी० है। इसका कलात्मक विम्बमान ३२ विकला है। पृथ्वी से इसकी दूरी ६२,०८,००,००० कि० मी० है। सूर्य से इसकी दूरी ७७,२८,००,००० कि० मी० है। सूर्य से इसकी न्यूनतम दूरी ७३,४४,००,००० कि० मी० तक हो जाती है। यह पृथ्वी से १२०० गुणा बड़ा तथा ३१० गुणा भारी है। यह अपनी धुरी पर ९ घण्टा ५५ मिनट में एक वार घूम जाता है। अपनी कक्षा पर सूर्य की परिक्रमा करने में इसे ४,३३२ दिन ३५ घटी ५ पल अर्थात् ११ वर्ष १० मास १४ दिन २० घण्टा २ मिनट और ७ सैकेण्ड लगते है। यही इसका भगणकाल है। एक राशि का भोग करने में इसे ३६१ दिन २ घटी ५५ पल २५ विपल का समय लगता है। यही वृहस्पति के एक संवत्सर का काल है। इसी आधार पर इसके १२ वर्षीय और ६० वर्षीय युग माने जाते हैं।

यह सूर्य से १२० अंश पीछे होने पर वक्री और १२० अंश आगे होने पर मार्गी होता है। वक्री अवस्था में १२ अंश पीछे हटता है, तथा चार मास वक्री रहता है। पुन: ८ मास मार्गी रहता है। यह जैसे-२ सूर्य के निकट होता जाता है, वैसे-२ इसकी गति शीघ्र होती जाती है। यह सूर्य से मन्दगति होने के कारण पश्चिम में अस्त और पूर्व में उदित होता है। यह सूर्य से ११ (ग्यारह) अंश के अन्तर तक अस्त रहता है। करीब ३० दिन अस्त रहकर यह ३७२ दिन उदित रहता है। यह २७८ दिन मार्गी और १२२ दिन वक्री रहता है। यह सूर्य से २ य राशि पर शीघ्रगामी, ३ य राशि पर समचारी, ४ थ राशि पर मन्दचारी, ५म और छठी राशि पर वक्री, ७म तथा ८म राशि पर अतिवक्री, ९म तथा १०म पर कुटिल और ११वीं तथा १२वीं राशि पर पुनः शीघ्रगामी हो जाता है। इसका युतिकाल १ वर्ष १ मास ३ दिन ० घटी और ३६ पल है। अर्थात् इतने समय के वाद इसके उदयास्त और वक्रमार्ग-चक्र की पुनः आवृत्ति होती है। मंगल और वृहस्पति की कक्षाओं के बीच में करीब ९०० उपग्रह विचरण करते हैं।

शनि

शनि पृथ्वी से बहुत दूर होने से बहुत छोटा दिखाई देता है। इसकी कलात्मकगति भी इसी कारण बहुत कम है। इसका व्यास १,२६,६५६ कि० मी० है। इसका कलात्मक विम्बमान १९ विकला है। यह पृथ्वी से ७३४ गुणा बड़ा है। यह सूर्य से १,४१,७६,००,००० कि० मी० दूर है। पृथ्वी से इसकी दूरी १,२६,५६,००,००० कि० मी० है। यह अपनी धुरी पर १० घण्टा १४ मिनट और २४ सैकेण्ड में एक चक्र पूरा कर लेता है। अपनी कक्षा पर सूर्य की परिक्रमा करने में इसे १०,७५९ दिन, अर्थात् २९ वर्ष ५ मास १६ दिन २३ घण्टा १६ मिनट और ३२ सैकेण्ड का समय लगता है। यह लगभग ढाई वर्ष में एक राशि पार करता है।

यह प्रतिवर्ष चार मास वक्री और आठ मास मार्गी रहता है। यह सूर्य से तीन राशि पीछे रहने पर तीन कला, और चार राशि पीछे रहने पर १ कला प्रतिदिन चलता है। सूर्य के अधिक निकट आ जाने पर यह प्रतिदिन ८ कला गति करता है। सूर्य से चौथी राशि के अन्त में यह वक्री हो जाता है। वक्री होने पर १२० अंश चलने पर यह मार्गी हो जाता है।

सूर्य से मन्दगति होने से यह पश्चिम में अस्त और पूर्व में उदित होता है। यह सूर्य से १५ अंश के अन्तर तक अस्त रहता है। यह ३६ दिन अस्त, ३४० दिन उदित, २३८ दिन मार्गी, १३७ दिन वक्री और १८० दिन अतिचारी रहता है। यह सूर्य से दूसरी और बारहवीं राशि पर शीघ्रगामी, ग्यारहवीं और तीसरी राशि पर समचारी, चौथी पर मन्दचारी, पांचवी-छठी पर वक्री, सातवीं-आठवीं राशि पर अतिवक्री तथा नौवीं और दशवीं राशि पर कुटिलगति होता है। इसका युतिकाल १ वर्ष ० मास १२ दिन ३ घटी और ३६ पल है। अर्थात् इतने समय के पश्चात् यह पुनः क्रमशः पूर्ववत् गति करता है।

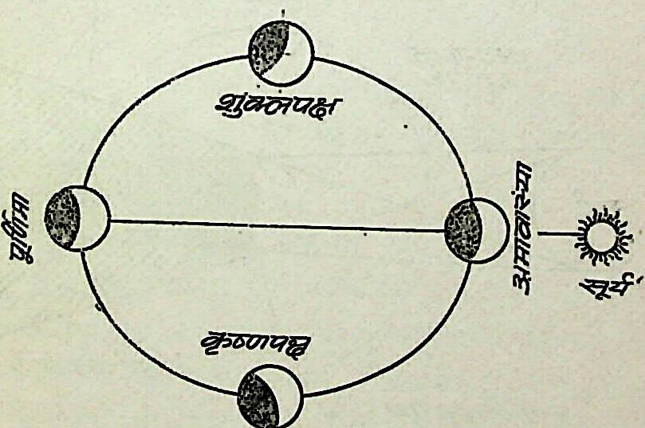
चन्द्रमा

पृथ्वी पर सभी ग्रहों से अधिक चन्द्रमा का प्रभाव है। चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है। इसलिए यह पृथ्वी का उपग्रह है। भारतीय प्राचीनमत में इसे सूर्य के पश्चात् दूसरे स्थान का ग्रह माना जाता है। इसका व्यास ३,४५६ कि० मी० है। इसका कलात्मक विम्बमान लगभग ३१ कला है। पृथ्वी से इसकी दूरी ३,५०,८०० कि० मी० है। यह सभी ग्रहों से अधिक शीघ्रगति है। यह ४ घटी ३४ पल में एक अंश

चलता है। पृथ्वी की परिक्रमा करने में इसे २७ दिन ७ घण्टा ४३ मिनट ११ सैकेण्ड और ५ प्रति सेकेण्ड लगता है। ज्योतिष के संहिताग्रन्थों में इसे ही चान्द्र-नाक्षत्र-मास कहा गया है। दूसरे शव्दों में यही चन्द्रमा का भगणकाल है। चन्द्रमा एवं अन्य ग्रह सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं। चन्द्रमा एवं सूर्य की गति का १२ अंश अन्तर होने पर एक तिथि मानी जाती है।

चन्द्रकलायें

सूर्य से १२ अंश के अन्तर तक यह अस्त रहता है। सूर्य और पृथ्वी के मध्य में चन्द्रमा की कक्षा है। अतः अमावस्या को सूर्य चन्द्र से ठीक ऊपर होता है। इस कारण चन्द्र का पृथ्वी की ओर का भाग अन्धकारयुक्त रहता है। सूर्य से शीघ्रगति होने से यह पूर्व में अस्त और पश्चिम में उदित होता है। सूर्य से इसका अन्तर जैसे-२ बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे यह सूर्यास्त के पश्चात् पश्चिम-आकाश में ऊपर उठाता हुआ प्रकाशित होता है। वैसे चन्द्रमा का आधे से अधिक भाग सदा सूर्य से प्रकाशित रहता है। परन्तु इसका जितना प्रकाशित भाग पृथ्वी की ओर होता है, मात्र उतना ही भाग हम प्रकाशित



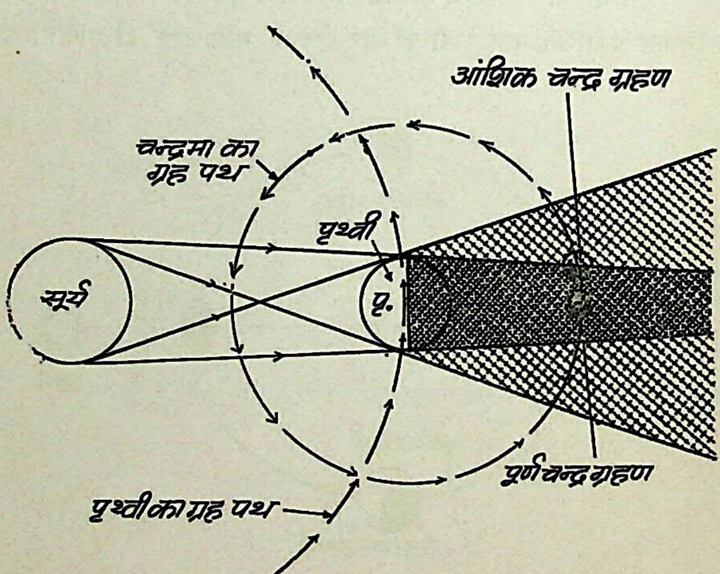
चन्द्रकलाएँ

देख पाते हैं। सूर्य से अन्तर बढ़ने के कारण जैसे-जैसे सूर्य ऊपर से नीचे उतरता जाता है, वैसे-वैसे पृथ्वी पर चन्द्र की कलायें अधिकाधिक होने लगती हैं। पूर्णिमा को सूर्य-चन्द्र पृथ्वी की दोनों ओर होते हैं। इसलिए ये दोनों १८० अंश के अन्तर पर परस्पर सम्मुख रहते हैं। यही पूर्णिमा होती है। इसके बाद दोनों का अन्तर घटने लगता है। अतः

पृथ्वी पर चन्द्र की कला भी घटने लगती है। धीरे-धीरे पुनः अमावस्या की स्थिति हो जाती है। चन्द्रमा का युतिकाल २७ दिन १६ घटी १७ पल और ४५ विपल है, अर्थात् इतने समय के पश्चात् चन्द्रमा पुनः पूर्व अवस्था-क्रम में आ जाता है।

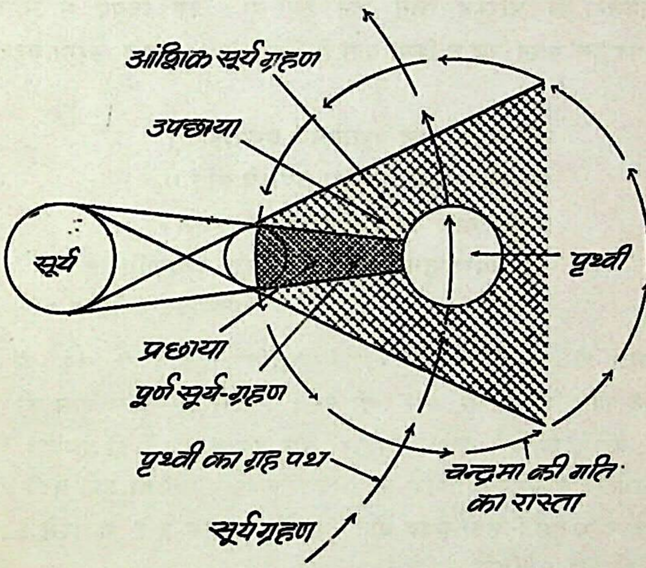
राहु-केतु तथा सूर्य-चन्द्र ग्रहण

चन्द्रमा की कक्षा और पृथ्वी की कक्षा का जो प्रथम योग है, उसे राहु और दूसरे योग को केतु कहा जाता है। ये दोनों कक्षायें बड़े वृत्त हैं। अतः इनके दोनों योग परस्पर १८० अंश के अन्तर पर रहते हैं। भारतीय फलितज्यौतिष में फलदायी होने से इन्हें भी ग्रह माना जाता है। यद्यपि ये आकाशीय बिन्दुमात्र हैं, और इनका कोई विम्ब नहीं है। इनकी सदा वक्रगति होती है। इनकी दैनिक-गति ३/१०/४८ कलादि होती है। ये १८ वर्षों में द्वादश राशि भोग करते हैं।



पृथ्वी की छाया सूर्य से विपरीत दिशा में चन्द्रकक्षा से ऊपर तक जाती है। अतः पूर्णिमा को १८० अंश के अन्तर पर होने से पृथ्वी की दोनों ओर सूर्य-चन्द्र परस्पर सम्मुख रहते हैं। ऐसी स्थिति में यदि सूर्य अथवा चन्द्र राहु-केतु के निकट हों तो चन्द्र पृथ्वी की छाया में प्रविष्ट हो जाता है। इसे ही चन्द्र-ग्रहण कहते हैं। अमावस्या को

सूर्य और पृथ्वी के मध्य चन्द्र होता है। ऐसी स्थिति में सूर्य-चन्द्र यदि राहु या केतु के निकट हों तो जिन पृथ्वीवासियों को सूर्य देखने में चन्द्रमा अवरोध करता है, उनका



सूर्यग्रहण होता है। चन्द्रग्रहण में चन्द्र अन्धकार में प्रवेश करता है। अतः सभी लोगों का एक साथ चन्द्रग्रहण होता है। परन्तु सूर्यग्रहण में सबका एक साथ दृष्ट्यवरोध न होने से सबका एक साथ सूर्य-ग्रहण नहीं होता।

कालमान

भारत में नौ प्रकार के कालमान माने जाते हैं। उनके नाम हैं—ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, मनु, वार्हस्पत्य, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र। यह क्रम बड़े कालमान से छोटे कालमान की ओर है। सुविधा के लिए छोटे कालमान से प्रारम्भ कर हम इसे समझेंगे ; इनमें नाक्षत्र, चान्द्र, सावन और सौर मानों के दिन, मास और वर्ष का सभी के लिए उपयोग होता है। ऐसा सामान्य रूप से है। विशेष रूप में नाक्षत्रमान से घटी, चान्द्रमान से तिथि और मास, सावनमान से दिन और सौर मान से ऋतु, अयन, वर्ष और युग की गणना प्रदर्शित की जाती है। वार्हस्पत्य मान से संवत्सर और १२ तथा ६० वर्षों के युगों की गणना की जाती है। मनुमान से मन्वन्तर, पित्र्यमान से मास, दिव्यमान से युग, ब्राह्ममान से सृष्टि तथा कल्प की गणना की जाती है। आगे हम इसे विस्तार से समझेंगे।

कालगणना का आरम्भ

कालमानों की गणनाप्रक्रिया जानने के पूर्व यह जानना बहुत आवश्यक है कि कालगणना का आरम्भ किस दिन हुआ था। इस विषय में कालमाधव में ब्रह्मपुराण का एक वचन उद्धृत किया गया है, जिसे यहां उद्धृत करना बहुत उपयोगी होगा।

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मासमर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रं तत्तदा सूर्योदये सति॥
प्रवर्तयामास तदा कालस्य गणनामपि।
ग्रहान्वारानृतून् मासान् वत्सरान् वत्सराधिपान्॥
—कालमाधव-उपोद्घात।

अर्थात्—ब्रह्मा जी ने चैत्र मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि को लंका में सूर्योदय के समय संसार की सृष्टि की थी, और उसी समय से काल की गणना चालू की थी। उसी समय ग्रहों, वारों, ऋतुओं, मासों, संवत्सरों और संवत्सराधिपों को प्रवर्तित किया था। इसीलिए तभी से चैत्र-शुक्लप्रतिपदा को वर्षप्रतिपदा मनाने की प्रथा चली आ रही है। सृष्टि का आरम्भ हुए कितना समय बीत चुका है, यह हम आगे बतायेंगे। अभी हमें कालमानों की गणना-प्रक्रिया का विवेचन करना है।

नाक्षत्रमान

पृथ्वी अपनी धुरी पर विषुवत्‌रेखा की सीध में पूर्व की ओर घूमती रहती है। इसीलिए ग्रह-नक्षत्र हमें प्रतिदिन पश्चिम की ओर जाते हुए दिखाई देते हैं। पृथ्वी का कोई निश्चित स्थान किसी निश्चित नक्षत्र के सामने से घूमता हुआ अगले दिन जब पुनः उसी नक्षत्र के सामने आ जाता है, तो नक्षत्रों का एक चक्र पूरा हो जाने से एक नाक्षत्र-दिन कहलाता है। आजकल रात्रि में याम्योत्तर रेखा में स्थित नक्षत्र से इसकी गणना की जाती है। यह २१,६०० असु का होता है। एक असु नक्षत्रीय ४ सेकेण्ड के बराबर होता है। इस प्रकार २४ होरा अर्थात् घण्टों का एक नक्षत्रीय अहोरात्र होता है। हमारी घड़ियों में जो २४ घण्टे होते हैं, वे नाक्षत्र नहीं होते। वे मध्यम सावनमान के होते हैं, जो सूर्योदय से सूर्योदय तक २४ बनाते हैं। केवल अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों के उपयोग में आने वाली घड़ियां ही नाक्षत्र होती हैं। पृथ्वी की दैनिक गति लाखों-करोड़ों वर्षों तक एक जैसी ही रहती है। इस लिए भारतीय ऋषियों ने नाक्षत्र काल को ही कालगणना का मूल आधार माना था। संसार भर के वैज्ञानिक आज भी इस बात को मानते हैं। घटी-गणना नाक्षत्रमान से होती है। ३० नाक्षत्र-दिन का नाक्षत्रमास तथा ३६० नाक्षत्रदिन का नाक्षत्रवर्ष माना जाता है।

सावन

प्राचीन समय में आर्यजन वैदिकयज्ञों में सूर्योदय से सूर्योदय तक एक अहोरात्र में तीन बार सोमलता का रस निचोड़ कर देवताओं को अर्पित करते थे। इसी कारण सूर्योदय से सूर्योदय तक के काल को सावन दिन कहा जाने लगा। सम्पूर्ण लोकव्यवहार इसी कालमान से चलता है। सूर्योदय सरलता से सबको दिखाई देता है और रात की निद्रा के बाद सूर्योदय से ही दुनिया के कामकाज की शुरूआत होती है। इसलिए प्राचीन समय से ही सावनदिन से ही सम्पूर्ण लोकव्यवहार किये जाते हैं।

वारप्रवेश

भारतीय-ज्योतिष के सिद्धान्त-ग्रन्थों में सावनदिन के विषय में एक वाक्यता है; यद्यपि अन्य कई विषयों में मतभेद भी हैं। जैसे सूर्यसिद्धान्त के अनुसार लंका में अर्धरात्रि के समय सृष्टि का आरम्भ हुआ। इसलिए वारप्रवेश भी अर्धरात्रि से ही मानते हैं, परन्तु सावनदिन सूर्योदय से ही मानते हैं। वर्तमान में सारे संसार में प्रचलित ईस्वी-कालगणना में भी अर्धरात्रि से ही वारप्रवेश माना जाता है। संस्कृत-व्याकरण में तथा सूर्य के उत्तरायण-दक्षिणायन के अनुसार देवताओं की दिनरात मानने की धारणा के पीछे भी अर्धरात्रि से नया दिन अथवा वारप्रवेश मानने का सिद्धान्त ही है। कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष को पितरों की दिन-रात्रि मानने में भी यही सिद्धान्त है। सन्ध्योपासनादि में भी अर्धरात्रि से ही वारप्रवेश माना जाता है। वारगणना सावनमान से ही होती है। अतः वारप्रवेश और सावनदिन का आरम्भ दोनों एक ही कालबिन्दु से मानना चाहिये। परन्तु सूर्य सिद्धान्त के मत में ऐसा नहीं है।

दूसरी तरफ विष्णुधर्मोत्तर पुराण, आर्यभट्ट-प्रथम, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य आदि विद्वान् लंका में सूर्योदय के समय सृष्टि का आरम्भ मानते हैं। अतः उनके मत में सूर्योदय से ही सावनदिन तथा वारप्रवेश माने जाते हैं। लोकव्यवहार तथा राजकार्य में भी दोनों ही मान्यतायें चल रही हैं। विशेष रूप से धार्मिक व्रतपर्व, सन्ध्योपासना, ज्योतिष की इष्टकाल-गणना आदि सूर्योदय से मानी जाती है।

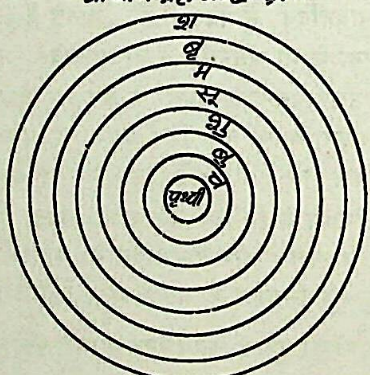
सावनदिन-गणना

पृथ्वी अपनी धुरी पर एक चक्र पूरा करते-करते अपनी कक्षा पर कुछ पश्चिम की ओर ५९ कला ८ विकला और १० प्रतिविकला खिसक जाती है। इसलिए सूर्य के सामने पहुँचने में प्रतिदिन उसे कुछ विलम्ब हो जाता है। यह बिलम्ब प्रतिदिन लगभग ५९ असु के बराबर होता है। इसलिए सावनदिन नाक्षत्रदिन से क़रीब ५९ असु अधिक होता है। अतः सावन दिन का मान लगभग २१,६५९ असु होता है। सामान्यतः ३० दिन का मास तथा ३६० दिन का वर्ष माना जाता है।

सप्ताह तथा वारगणना-क्रम

७ सावन-दिनों का एक सप्ताह होता है। सप्ताह के दिनों को सात वारों का नाम दिया गया है। वारों को वैदिक-युग में वासर कहा जाता था। सात वारों के नाम क्रमशः ये हैं—रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि। इनके नाम और क्रम का विशेष कारण है। उसे यहाँ समझ लेना बहुत आवश्यक है। संसार भर में आजकल वारों के नाम और क्रम यही हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि यह नामक्रम किसी एक ही स्थान से सारे संसार में प्रचारित हुआ है। वह देश निःसन्देह भारतवर्ष है। क्योंकि इस की उत्पत्ति भारतवर्ष में ही सूर्यसिद्धान्त में उपलब्ध है। अन्य किसी देश को इसका ज्ञान नहीं है। पहले बतलाया गया है कि प्राचीन भारतीय मत में पृथ्वी के ऊपर क्रमशः चन्द्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, गुरु और शनि की कक्षायें हैं।

प्राचीन ग्रह कक्षा क्रम



इसके अनुसार जिस काल से सावनदिन का प्रारम्भ हुआ तब से एक-एक होरा (घण्टा) का सूक्ष्म वार उपर्युक्त क्रम से माना जाता है। एक दिन-रात में २४ होरा में अर्थात् घण्टे होते हैं। इनमें सौरमण्डल का अधिपति होने से सूर्य को प्रथम होरा का अधिपति माना गया है। इसके बाद दूसरी आदि होरा के अधिपति क्रम से सूर्य से निचली कक्षाओं के ग्रह हुए। यह क्रम बार-बार चलाते रहने से चौबीसवीं होरा (घण्टा) के अधिपति बुध हुए और एक दिन समाप्त हो गया। दूसरे दिन प्रथम होरा का स्वामी बुध के बाद चन्द्र हुआ। इसी प्रकार आगे भी होराओं के स्वामी निश्चित किये गये। ज्योतिष में यह सिद्धान्त है कि जो कालखण्ड जिस ग्रह के स्वामित्व में प्रारम्भ हो उस कालखण्ड का वही ग्रह स्वामी हो। इस प्रकार प्रथम दिन का स्वामी सूर्य हुआ। अतः इसे रविवार कहा गया। इसी प्रकार आगे सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार, और शनिवार निश्चित हुए। यह निम्नलिखित चक्र से स्पष्ट हो जायेगा :—

कोंष्ठक संख्या-२ (कं)

होरा संख्या

वार संख्या	नाभ	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
१	सू.	सू.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.	श.
२	च.	च.	श.	वृ.	मं	सू.	शु.	बु.	च.	श.	.वृ	मं.	सू
३	भं.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.
४	बु.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.
५	वृ.	वृ.	मं.	सू.	शु.	वृ.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.	वृ.
६	शु.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.
७	श.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.

कोष्ठक संख्या २ (ख)

होरा संख्या

वार संख्या	नाम	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	सू.	वृ.	मं.	शू.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.	बु.
२	च.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.
३	मं.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.
४	बु.	सू.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.	श.
५	गु.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.
६	शु.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.
७	श.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.	सू.	शु.	बु.	च.	श.	वृ.	मं.

चक्र में प्रथमवार से लेकर सातवेंवार तक की २४ होराओं (घण्टों) के अधिपति बतलाये गये हैं । प्रथमवार का प्रथम होराधिपति सूर्य है । अतः प्रथमवार रविवार हुआ । द्वितीय वार का प्रथम होराधिपति चन्द्र है । अतः द्वितीयवार सोमवार हुआ । इस प्रकार तृतीय, चतुर्थ एवं सप्तमवार तक के अधिपतियों के अनुसार उनके नाम निश्चित किये गये हैं । सातवेंवार के बाद पुनः पूर्ववत् होराधिपति आते हैं, अतः उसी क्रम से पुनः सातवार आते हैं । इस कारण सात से कम अथवा अधिक वार नहीं होते । यद्यपि मास तथा वर्ष की दिन संख्या से इसका मेल नहीं बैठता, फिर भी उपर्युक्त कारण से सारे संसार में ये ही वार इसी क्रम से माने जाते हैं ।

राष्ट्रीय स्थानीय-समय तथा स्थिर-समय

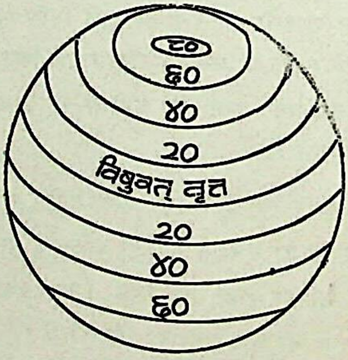
प्रारम्भ में संसार के लोग सूर्योदय अथवा मध्यरात्रि से अपनी प्रथानुसार वार प्रवेश मान लेते थे । इसी प्रकार भिन्न-भिन्न स्थान में भिन्न-भिन्न काल में सूर्योदय, मध्याह्न और सूर्यास्त से कालगणना करते थे । इसलिए एक स्थान की कालगणना, दूसरे स्थान की शुद्ध कालगणना नहीं हो सकती थी । आज भी फलित-ज्योतिष में जन्म-पत्र, प्रश्न आदि की ग्रह-कुण्डली बनाते समय इसी विधि का अनुसरण किया जाता है । इस विधि में अपने-अपने स्थान के अनुसार लग्नसाधन किया जाता है । इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थान पर भिन्न-भिन्न काल में घड़ी में बारह बजते हैं । इसे स्थानीय-समय अथवा Local Time कहते हैं ।

बाद में गणित का विकास होने तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क बढ़ने पर भिन्न-भिन्न देशों तथा स्थानों के समय को समझने में बड़ी कठिनाई होने लगी । यह सोचा गया कि जिस समय सृष्टि का आरम्भ हुआ उस समय जिस स्थान में सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त और मध्यरात्रि में जो कुछ हुआ हो उसे ही स्थिर रूप में आरम्भ बिन्दु मान लिया जाये । पहले बताया गया है कि भारत के कुछ आचार्य लंका में सूर्योदय से तथा कुछ मध्यरात्रि से सृष्टि का आरम्भ मानते हैं । चूंकि प्राचीनकाल में लंका, उज्जैन और कुरुक्षेत्र को एक ही दक्षिणोत्तर-देशान्तररेखा में माना जाता था । इसलिए भारत के मध्य में स्थित होने तथा प्राचीन विजेताओं की राजधानी होने के कारण उज्जैन को कालगणना का केन्द्र माना गया । बहुतकाल तक सारे विश्व में इसकी मान्यता रही । भारत में अब भी प्राथमिक-ग्रहगणना उज्जैन के मध्यमकाल के अनुसार ही की जाती है । परन्तु बाद में सारे विश्व में अंग्रेज़ों का प्रभुत्व स्थापित होने पर लन्दन-नगर के 'ग्रीनविच' नामक स्थान में स्थित ज्योतिष-वेधशाला को संसार की कालगणना

का केन्द्र बना दिया गया। आजकल सारे संसार में इसकी मान्यता है। संसार के सभी देशों तथा स्थानों के काल तथा स्थान की गणना 'ग्रीनविच' से ही की जाती है। इस गणना के लिए अक्षांश और देशान्तर-रेखाओं की कल्पना की गयी है। अतः उन्हें समझना आवश्यक है।

अक्षांश और देशान्तर रेखाएं

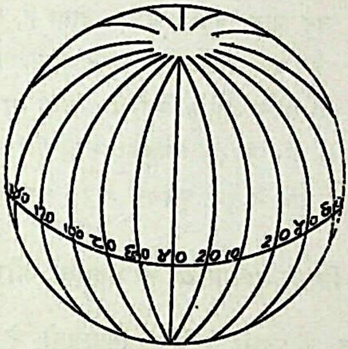
उत्तरी-ध्रुव से विषुवत्वृत्त तक भूगोल पृष्ठ पर ९० अंश हैं। इसी प्रकार दक्षिणी-ध्रुव से विषुवत्वृत्त तक ९० अंश हैं। विषुवत्वृत्त से उत्तर तथा दक्षिण की ओर एक-एक अंश पर विषुवत्वृत्त के समानान्तर क्रमशः छोटे-छोटे वृत्तों की कल्पना की गयी है। इन्हें अक्षांश-वृत्त कहते हैं। विषुवत्वृत्त से उत्तर में उत्तरी-अक्षांश तथा दक्षिण में दक्षिणी-अक्षांश कहा जाता है। एक अक्षांश की दूरी भू-पृष्ठ पर लगभग ११० कि० मी० होती है।



अक्षांश रेखाएँ

विषुवत्वृत्त के प्रत्येक अंश पर उत्तरी-ध्रुव से दक्षिणी-ध्रुव तक गये हुए दक्षिणोत्तर वृत्त भू-पृष्ठ पर जो वप्र बनाते हैं, उन्हें देशान्तर-रेखा कहा जाता है। विषुवत्वृत्त पर दो देशान्तर-रेखाओं के मध्य की दूरी लगभग ११० कि० मी० होती है। विषुवत्रेखा से जैसे-जैसे उत्तर या दक्षिण की ओर जाते हैं, वैसे-वैसे देशान्तर-रेखाओं के मध्य की दूरी घटती जाती है। दोनों ध्रुवों पर उनकी दूरी शून्य है। सम्पूर्ण भूगोल २४ घन्टों में एक बार अपनी धुरी पर घूम जाता है। अर्थात् पृथ्वी को ३६०

अंश घूमने में २४ घन्टे लगते हैं। इसलिए एक अंश घूमने में ४ मिनट का समय लगता है।



देशान्तर रेखाएँ

यह देशान्तर-गणना प्राचीन समय में उज्जैन से होती थी। आजकल देशान्तर-गणना ग्रीनविच से की जाती है। ग्रीनविच को केन्द्र मान कर उससे पूर्व और पश्चिम में पृथ्वी के दो भाग किये गए हैं। अर्थात् ग्रीनविच से १८० अंश पूर्व तथा १८० अंश पश्चिम, इन दो रूपों में देशान्तर माने जाते हैं। ये दोनों देशान्तर-रेखाएं पृथ्वी पर जापान से पूर्व अमरीका के हवाई-द्वीप से एक होकर गुजरती हैं। अर्थात् पृथ्वी गोल होने से १८०° पूर्व और १८०° पश्चिम में दोनों देशान्तर-रेखायें एक ही हो जाती हैं। इसी देशान्तर को अन्तर्राष्ट्रीय तिथि परिवर्तन रेखा माना जाता है। अर्थात् सूर्य जब उसके ऊपर आता है, तो ग्रीनविच में मध्यरात्रि होती है और तभी से तिथि और वार का परिवर्तन हो जाता है।

भारत का स्थिर-समय

अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय-राजकाज ठीक ढंग से चलाने के लिए किसी देश की विशेष देशान्तर-रेखा को स्थिर रूप में सम्पूर्ण देश के काल-निर्धारण के लिए मान लिया जाता है। उसे आजकल उस देश का स्थिर-समय या स्टैण्डर्ड-टाईम (Standard Time) कहा जाता है। कई देशों में विभिन्न प्रदेशों के लिए विभिन्न स्टैण्डर्ड टाईम माने जाते हैं। इसके उदाहरण -- अमेरिका, रूस और आस्ट्रेलिया हैं। हर देश के लोग प्रायः अपनी घड़ियां अपने देश के स्थिर-समय के अनुसार रखते हैं। भारत का स्थिर

समय ग्रीनविच से ८२/३० अंश पूर्व में माना जाता है। यह रेखा मिरजापुर— उ०प्र० के पूर्व से गुजरती है। यह अफगानिस्तान की पश्चिमी-सीमा और वर्मा की पूर्वी-सीमा के मध्य में है। ग्रीनविच से इसका अन्तर ५·३० घण्टा है। अर्थात् ग्रीनविच में जब प्रातः ६·३० वजा होता है, तब भारत में १२·०० बजे मध्याह्न माना जाता है। इसे तत्कालीन भारत के प्रशासक लार्डकर्जन ने सन् १९०५ ई० के जुलाई मास में अपने आदेश से स्थिर किया था। द्वितीय-विश्वयुद्ध के समय एक सितम्बर सन् १९४२ ई० से १४ अक्तूबर १९४५ ई० तक इसे एक घण्टा आगे वढ़ा दिया गया था। उसके वाद से पुनः पूर्ववत् ५·३० घण्टा समयान्तर माना जाता है।

भारत के सभी जिला-मुख्यालयों के अक्षांश और ग्रीनविच से देशान्तर

यहां भारत के सभी जिला-मुख्यालयों के अक्षांश और ग्रीनविच से देशान्तर प्रदर्शित किए जा रहे हैं। जिन जिलों के नाम अपने मुख्यालय के नाम से भिन्न हैं, उन्हें उनके मुख्यालय के नाम के साथ कोष्ठक में लिखा गया है। यह सूची देवनागरी वर्णानुक्रम के आधार पर दी जा रही है। यह स्मरणीय रहे कि भारत के सभी स्थानों के अक्षांश उत्तर और देशान्तर पूर्व हैं। निम्नलिखित विन्दु दशमलव के हैं। दशमलव विन्दु के दाहिनी ओर के अंक को ६० से गुणा और १०० से भाग देने पर इनका कलात्मकमान निकल जाता है।

कोष्ठक संख्या—३

स्थान	अक्षांश	देशान्तर	स्थान	अक्षांश	देशान्तर
अंग्रेज़-वाज़ार (मालदह)	२५·०३	८८·०९	अम्बिकापुर(सरगुजा)	२३·१०	८३·१५
अकोला	२०·४२	७७·०२	अलमोड़ा	२९·३७	७९·४०
अगरतला	२३·५०	९१·२५	अलवर	२७·३४	७६·३८
अजमेर	२६·२७	७४·४२	अलीगढ़	२७·५४	७८·०६
अनन्तनाग	३३·४३	७५·१७	अलीपुर	२२·३२	८८·२४
अनन्तपुर	१४·४१	७७·३९	अलीबाग	१८·३९	७२·५५
अमरावती	२०·५६	७७·४८	अल्लेप्पी	९·३०	७६·२३
अमरेली	२१·३६	७१·१५	अहमदनगर	१९·०५	७४·४८
अमृतसर	३१·३७	७४·५५	अहमदाबाद	२३·०३	७२·४०
अम्बाला	३०·२१	७६·५२	अहवा (डांग्स)	२०·३६	७३·४४

स्थान	अक्षांश	देशान्तर
आगरा	२७·१०	७८·०५
आजमगढ़	२६·०३	८३·१३
आदिलाबाद	१९·३७	७८·३०
आरा	२५·३४	८४·३
आलंग (सिआंग)	२८·१९	९४·७७
इटानगर	२७·०८	९३·४०
इटावा	२६·४७	७९·०२
इदुक्की	१०·११	७६·५१
इन्दौर	२२·४४	७५ ५०
इम्फाल	२४·४४	९३·५८
इरोद (पेरियार)	११·२०	७७·४६
उखरूल (पू० मणिपुर)	२५·१३	९४·४२
उज्जैन	२३·०९	७५·४३
उत्तरकाशी	३०·४७	७८·३१
उदगमण्डलम्	२१·२७	८६ ४९
उदयपुर (त्रिपुरा)	२३·३१	९१.३१
उदयपुर (राज.)	२७·४२	७५ ३३
उन्नाव	२६ ४८	८०.४३
उस्मानाबाद	१८·०८	७६·०६
ऊधमपुर	३२·५५	७५·०७
ऊना	३१ ३२	७६·१८
एटा	२७·३५	७८·४०
एरनाकुलम्	१०·००	७६·१५
एलूरु	१६·४३	८१·०९
ऐजोल	२३·३६	९३·००
ओंगोल	१५·३०	८०·०६
औरंगाबाद (बिहार)	२४·४५	८४·२५
औरंगाबाद(महाराष्ट्र)	१९·५३	७५·२३
औरई (जालौन)	२६·०८	७९·२३
कटक	२०·२८	८५·५४
कटिहार	२५·३०	८७·४०
कठुआ	३२·१७	७५ ३६
कन्नानौर	११·५२	७५·२५
कपूरथला	३१·२३	७५·२५
करइकल	१०·५५	७९·५२
करनाल	२९·४२	७७·०२
करनूल	१५·५०	७८·०५
करीमनगर	१८·२८	७९·०६
कलकत्ता	२२·३४	८८·२४
कलपा (किन्नौर)	३१·३३	७८ १५
कवरत्ती	१०·३०	७२·३८
काकिनद(पू.गोदावरी)	१६·५७	८२·१५
कांचीपुरम्	१२·५०	७९·४५
कानपुर	२६·२८	८०·२४
कालीकट (कोझिकोड)	११·३५	७५·२८
कुड़ग	१२·३९	७५·४९
कुड्डपाह	१४·२८	७८·५२
कुड्डलोर (अर्कोट)	११·४३	७९·४९
करवार	१४·४८	७४ ११
कुरुक्षेत्र	३०·००	७६·५४
कुल्लू	३२·००	७७·०९
कूचविहार	२६·२०	८९·२९
कृष्णनगर(नदिया)	२३·२४	८८ ३३
केओंझर (नीलगढ़)	२१·३०	८५·३०
केलोंग-(लाहौलस्फीती)	३२·३६	७७·०२
कोटा	२५·१०	७५·५२
कोट्टायम्	९·३६	७६·३४
कोयम्बतूर	११·००	७७·००
कोरापुत	१८·४९	८२·४७
कोलार	१३·०९	७८·११
कोल्लम	८·५४	७६·३८
कोल्हापुर	१६·४२	७४·१६

स्थान	अक्षांश	देशान्तर	स्थान	अक्षांश	देशान्तर
कोहिमा	२५·४०	९४·०८	चित्तौड़गढ़	२४·५४	७४·४२
खण्डवा	२१·५०	७६·२३	चित्रदुर्ग	१४·१४	७६·२६
खम्मम	१७·१५	८०·११	चिनसुरा (हुगली)	२२·५३	८८·२७
खरगोन	२१·६८	७५·१८	चुरचन्दपुर	२४·७५	९३·२०
खेड़ा	२२·४५	७२·४५	चुरू	२८·१९	७५·०१
खोन्सा (तिरप)	२६.९८	९५·५३	छत्तरपुर (म.प्र.)	२४·५४	७९·३८
गया	२४ ४९	८५·०१	छत्रपुर	१९·२१	८५·०३
गंगटोक	२७·२०	८८·४०	छपरा	५५·४७	८४·४७
गाजीपुर	२५·३४	८३·३५	छिन्दवाड़ा	२२·०३	७८ ५९
गिरिडीह	२४·१०	८६·२१	जगदलपुर (बस्तर)	१९·०५	८२·०४
गिलगित	३५·५५	७४·२२	जबलपुर	२३·१०	७९·५९
गुड़गांव	२८·३७	७७·०४	जम्मू	३२·४३	७४·५४
गुण्टूर	१६·१८	८०·२९	जयपुर	२६·५५	७५·५२
गुरदासपुर	३२·०३	७५·२७	जलगांव	२१·०५	७५ ४०
गुलवर्गा	१७·१९	७६·५४	जलपाइगुड़ी	२६·३२	८८·४६
गुना	२४ ४०	७७·२०	जामनगर	२२·२७	७०·०७
गोण्डा	२७·२८	८२·०१	जालन्धर	३१·१९	७५·१८
गोधरा	२२·४५	७३·४०	जालौर	२५ २२	७२·५८
गोपालगंज	२६·२८	८४·२६	जीन्द	२९·१९	७६·२३
गोरखपुर	२६·४५	८३·२४	जीरो (सुवनसिरी)	२७·८३	९३·७४
गौहटी (कामरूप)	२६·११	९१·४७	जूनागढ़	२१·३१	७०·३६
ग्वालियर	२६·१४	७८·१०	जैसलमेर	२६·५५	७०·५७
चण्डीगढ़	३०·४२	७६·५४	जोधपुर	२६·१८	७३·०४
चन्द्रपुर	१९·५७	७९·२१	जोरहाट	२६·४६	९४·१६
चमोली	३०·४७	७९·४०	जोवई	२५·४४	९२·२५
चम्बा	३२·५६	७६·१२	जौनपुर	२५·४६	८२·४४
चाइबासा	२२·३३	८५·३१	झबुआ	२२·४५	७४·३८
चिकमगलूर	१३·१८	७५·४९	झालावाड़	२४·५९	७६·२४
चित्तूर	१०·४२	७६·४७	झांसी	२५·२७	७८·३७

स्थान	अक्षांश	देशान्तर	स्थान	अक्षांश	देशान्तर
झुंझुनू	२८·०६	७५·२५	देहरादून	३०·१९	७८·०४
टीकमगढ़	२४·४५	७८·५३	धनबाद	२३·४७	८६·३०
टोंक	२६·११	७५·५०	धर्मशाला (कांगड़ा)	३२·१६	७६·२३
डाल्टेनगंज	२४·०२	८४·०४	धर्मपुरी	१२·०८	७८·१३
डिफू (कर्वी अंगलोंग)	२५·८१	९३·४६	धार	२२·३५	७५·२०
डिब्रूगढ़	२७·२९	९४·५८	धारवाड़	१५·२७	७५·०५
डुंगरपुर	२३·५०	७३·५०	धुवड़ी (गोआलपाड़ा)	२६·०२	९०·०२
डोडा	३३·१२	७५·५८	धुले	२०·५८	७४·४७
तंजावूर	१०·४७	७९·१०	धेनकनाल	२०·४०	८५·३८
तामेंगलोंग	२५·०४	९३·५८	नरसिंहपुर (म.प्र.)	२२·५७	७९·१५
तिरुचिरापल्ली	१०·५०	७८·४६	नरेन्द्रनगर (टेहरी)	३०·२०	७८·५३
तिरुनेलवेलि	८·४४	७७·४४	नवादा	२४·५३	८५·३५
तिरुवनन्तपुरम्	८·२९	७६·५९	नागपुर	२१·०९	७९·०९
तुएनसांग	२६·२०	९४·४३	नागरकोइल	८·११	७७·२९
तुमकुर	१३·२०	७७·०८	(कन्याकुमारी)		
तुरा	२५·३०	९०·१६	नागौर	२७·११	७३·४०
तेजपुर (दरांग)	२६·३७	९२·५०	नान्देड़	१९·०९	७७ २७
तेजू (लोहित)	२७·९०	९६·२१	नारनौल (महेन्द्रगढ़)	२८·०२	७६·१४
त्रिचूर	१०·३०	७६·१५	नालगोण्डा	१७·०३	७९·०२
थाणें	१९·३९	७३·२९	नासिक	२०·०२	७३·५०
दतिया	२५·३९	७८·२७	नाहन (सिरमौर)	३०·३३	७७·२१
दमोह	२३·५०	७९·२९	निजामाबाद	१८·४०	७८ १०
दरभंगा	२६·१०	८५·५७	नेल्लोर	१४·२७	८०·०२
दार्जिलिंग	२७·०३	८८·१८	नैनीताल	२९·२३	७९·३०
दिल्ली	२८·३८	७७·१२	नोंगस्टोइन	२५·४५	९१·५७
दिसपुर	२६·०९	९१·५०	नौगोंग	२६·२१	९२·४५
दुमका	२४·३१	८७·२१	पटना	२५·३७	८५·१३
दुर्ग	२१·११	८१·२१	पटियाला	३०·२०	७६·२५
देवरिया	२६·२३	८३·४२	पणजी	१५·३०	७३·५५
देवास	२२·५८	७६·०६	पन्ना	२४·४४	८०·१४

स्थान	अक्षांश	देशान्तर	स्थान	अक्षांश	देशान्तर
परभानी	१९·०८	७६·५०	बलूरघाट	२५·१४	८८·४७
पालघाट	१०·४६	७६·४२	बस्ती	२६·४८	८२·४६
पालमपुर	२४·१२	७२·२८	बहराइच	२७·३४	८१·३८
पाली	२५·४६	७३·२५	बहरामपुर(मुर्शिदावाद)	२४·०६	८८·१९
पिथौरागढ़	२९·६१	८०·२८	बंगलौर	१२·५८	७७·३८
पीलीभीत	२८·३८	७९·५१	बाड़मेर	२५·४५	७१·२५
पुदुक्कोट्टइ	१०·२३	७८·५२	बान्दा	२५·२०	८०·२२
पुदुच्चेरि	११·५८	७९·५४	बाराबंकी	२६·५६	८१·१३
पुणे	१८·३१	७३·५५	बारामूला	३४·१०	७४·३०
पुरी	१९·४८	८५·५२	बालाघाट	२१·४८	८०·१५
पुरुलिया	२३·२०	८६·२५	बालासोर	२१·३०	८६·५४
पूर्णियां	२५·४९	८७·३१	बांसवाड़ा	२३·३०	७४·२४
पुंछ	३३·५१	७४·०८	बांकुरा	२३·१४	८७·०७
पोर्टब्लेयर	११·४१	९२·४३	बिजनौर	२९·२३	७८·११
पौड़ी (गढ़वाल)	३०·१५	७९·३०	बिहारशरीफ(नालन्दा)	२५·२५	८५·५७
प्रतापगढ़	२५·३८	८१·५९	बीदर	१७·५७	७७·३९
प्रयाग (इलाहाबाद)	२५·२८	८१·५४	बीकानेर	२८·०१	७३·२२
फतेहगढ़	२७·२३	७९·४०	बीड़	१९·००	७५·५०
फतेहपुर	२५·५५	८०·५२	बीजापुर	१६·५०	७५·४७
फरीदकोट	३०·४०	७४·५७	बून्दी	२५·२७	७५·४१
फरीदाबाद	२८·२५	७७·२२	बुलढ़ाना	२०·३२	७६·१४
फिरोजपुर	३०·५५	७४·४०	बुलदन्दशहर	२८·२४	७७·५४
फूलबनी (बौधखोंड़मल्स)	२०·४२	८४·२५	बेगूसराय	२५·३९	८६·५४
फैजाबाद	२६·४७	८२·१२	बेतिया	२६·४८	८४·३३
बदायूं	२८·०२	७९·१०	बेतूल	२१·८८	७७·९८
बम्बई	१८·५५	७२·५४	बेलगांव	१५·५२	७४·३४
बरीपद (मयूरभंज)	२१·५६	८६·४६	बेलारी	१५·०९	७६·५५
बरेली	२८·२२	७९·२७	बोमडिला (कामेंग)	२७·५०	९२·४४
बलिया	२५·४४	८४·११	बोलांगिर	२०·४०	८३·३०

स्थान	अक्षांश	देशान्तर	स्थान	अक्षांश	देशांतर
भटिण्डा	३०·११	७५·००	मुजफ्फराबाद	३४·२४	७३·२२
भड़ोच	२१ ४१	७३·०१	मुरादाबाद	२८·५१	७८·४९
भण्डारा	२१·०९	७९·४२	मुरेना	२६·२३	७८·०४
भरतपुर	२७·१५	७७·३०	मुंगेर	२५·२३	८६·३०
भवानीपटना	१९·५८	८३·१२	मेदिनीपुर	२२·२५	८७·२१
भागलपुर	२५·१५	८७·०२	मेरठ	२९·०१	७७·४५
भावनगर	२१·४६	७२·११	मेहसाना	२३·४२	७२·३७
भिवानी	२८·४६	७६·१८	मैनपुरी	२७·१४	७९ ०३
भिंड	२६·३५	७८·४६	मैसूर	१२·१८	७६·४२
भीलवाड़ा	२५·२१	७४·४०	मैंगलोर	१२·५२	७४·५३
भुज	२३·१५	६९·४९	मोकोकचुंग	२६·३४	९४ ५५
भुवनेश्वर	२०·१५	८२·५२	मोतिहारी	२६·४०	८५ ५७
भोपाल	२३·१६	७७·३६	यवतमाल	२०·२३	७८ ११
मण्डला	२२·४३	८०·३५	यानम्	१६·४४	८२·१६
मण्डी	३१·४३	७६·५८	रतलाम	२३·३१	७५·०७
मण्ड्या	१२·५६	७६·९१	रत्नागिरि	१७·०८	७३·१९
मथुरा	२७·२८	७७·४१	राजकोट	२२·१८	७०·५६
मदुराई	९·५८	७८·१०	राजगढ़	२८·३९	७५ २६
मद्रास	१३·०४	८०·१७	राजनन्दगांव	२१·०५	८१·०५
मधुवनी	२६·२१	८६·०७	राजौरी	३३·३७	७४·२९
मन्दसौर	२४ ०३	७५·०८	रामनाथपुरम्(मदुराई)	९·२२	७८·५२
मलप्पुरम्	११·०७	७६·०४	रामपुर	२८·४८	७९·०५
मसुलीपटनम् (कृष्णा)	१५·५५	८१·१०	रायगढ़	२१·५४	८३·२६
महबूबनगर	१६·४२	७७·५८	रायचूर	१६·१२	७७·२१
माही	११·४२	७५·३४	रायपुर	२१·१५	८१·४१
मिर्जापुर	२५·१०	८२·३७	रायबरेली	२६·१४	८१·१६
मीरपुर	३३·१२	७३·५१	रायसेन	२३·१५	७७ ५०
मुजफ्फरनगर	२९·२८	७७·४४	रांची	२३·२३	८५·२३
मुजफ्फरपुर	२६·०७	८५·२७	रीवा	२४·३१	८१·१९

स्थान	अक्षांश	देशान्तर	स्थान	अक्षांश	देशान्तर
रोपड़	३०·५७	७६·३२	श्रीनगर (का.)	३४·०६	७४·५१
रोहतक	२८·५४	७६·३८	सतना	२४·३४	८०·५५
लखनऊ	२६·५५	८०·५९	सतारा	१७·४२	७४·०२
लक्ष्मीपुर	२७·५७	८०·४९	समस्तीपुर	२५·५५	८५·५०
लखीमपुर (खीरी)	२७·५४	८०·४८	सलेम	११·३९	७८·१२
ललितपुर	२४·२२	७८·२८	सवाईमाधोपुर	२५·५८	७६·३०
लुधियाना	३०·५५	७५·५४	सहरसा	२५·५५	८६·३५
लेह (लद्दाख)	३४·१०	७७·४०	सहारनपुर	२९·५८	७७·२३
वडोदरा	२२·००	७३·१६	संगरूर	३०·१२	७५·५३
वर्धमान	२३·१६	८७·५४	संगरेड्डी (मेंडक)	१८·०३	७८·१८
वर्धा	२०·४५	७८·३९	संभलपुर	२१·२८	८४·०१
वारंगल	१७·५८	७९·४०	सागर	२३·५०	७८·५०
वाराणसी	२५·२०	८३·००	सासाराम (रोहतास)	२४·५७	८४·०३
विजयनगरम्	१८·०७	८३·२७	सांगली	१६·५२	७४·३६
विदिशा	२३·३२	७७·५१	सिउरी (वीर भूमि)	२३·५४	८७·३४
विलासपुर (म. प्र.)	२२·०५	८२·१३	सिधी	२४·२०	८२·३९
विलासपुर (हि. प्र.)	३१·१९	७६·५०	सिरसा	२९·३२	७५·०७
विशाखापतनम्	१७·४२	८३·२०	सिरोही	२४·५३	७२·५४
वुलसार	२०·५९	७२·९६	सिलचर (काछार)	२४·५०	९२·५१
वेल्लोर	१२·५५	७९·११	सिलवास्सा	२०·१२	७३·१५
शाजापुर	२३·२६	७६·१८	सिलौंग	२५·३४	९१·५६
शाहजहांपुर	२७·५४	७९·५७	सिवान	२६·१२	८४·१३
शहड़ोल	२३·००	८१.३०	सीकर	२७·३६	७५·१५
शिमला	३१·०६	७७·१३	सीतापुर	२७·३२	८० ४३
शिमोगा	१३·५६	७५·३८	सीतामढ़ी	२६·३५	८५·३२
शिवपुरी	२५·४०	७७·४४	सीवनी	२२·०६	७९·३५
श्रीकाकुलम् (प्रकाशम्)	१८·१७	८३·५७	सुन्दरगढ़	२२·०६	८४ ००
श्रीगंगानगर	२९·४९	७३·५०	सूरत	२१·१२	७२·५२

स्थान	अक्षांश	देशान्तर	स्थान	अक्षांश	देशान्तर
सुरेन्द्र नगर	२२·४३	७१·४३	हावड़ा	२२·३५	८८·२३
सुलतानपुर	२६·१६	८२·०७	हसन	१३·०१	७६·१०
सेहोर	२३·१२	७७·००	हाजीपुर (वैशाली)	२५·४१	८५·१४
सोनीपत	२९·००	७७·०४	हाफलौंग	२५·१९	९३·०८
सोलन	३०·५५	७७·०९	हिम्मतनगर(सवरकाठा)	२३·४२	७३·०२
सोलापुर	१७·४०	७५·५६	हिसार	२९·१०	७५·४६
हजारीवाग	२३·५९	८५·२५	हुंजा	३६·३८	७४·६४
हमीरपुर (उ. प्र.)	२५·५८	८०·१२	हैदरावाद	१७·२०	७८·३०
हमीरपुर (हि. प्र.)	३१·६४	७६·५७	होशंगाबाद	२२·४६	७७·४५
हरदोई	२७·२३	८०·१०	होशियारपुर	३१·३२	७५·५७

स्थिर-समय (Standard Time) से स्थानीय-समय (Local Time) बनाना

८२·३० से कम देशान्तर वाले स्थानों के देशान्तरों को ८२·३० में से घटा कर, शेष को ४ से गुणा करने पर मिनट-सैकिण्डों में जो फल प्राप्त हो, उसे भारत के स्थिर-समय में से घटाने पर स्थानीय मध्यम समय प्राप्त होता है। ८२·३० से अधिक देशान्तर वाले स्थानों के देशान्तरों में से ८२·३० घटा कर जो शेष हो, उसे ४ से गुणा कर प्राप्त मिनट-सैकिण्ड को स्थिर समय में जोड़ने से स्थानीय प्राप्त समय होता है। इस प्रकार से प्राप्त स्थानीय समय स्थूल होता है। अतः इस स्थूलता को दूर करने के लिए इसमें एक कालान्तर संस्कार किया जाता है। इस संस्कार की सारणी और विधि को हम आगे बतलायेंगे।

भारत के स्थिर-समय के देशान्तर ८२·३० के स्थान में अन्य देश के स्थिर-समय का देशान्तर रखने पर उपर्युक्त विधि से ही अन्य देश का स्थानीय-समय निकाला जा सकता है। ग्रीनविच से पश्चिम में उपर्युक्त विधि से प्राप्त अन्तर को विपरीत धन-ऋण करना चाहिए।

स्थिर समय के सूर्योदय-सूर्यास्त से स्थानीय सूर्योदय-सूर्यास्त निकालना

उपर्युक्त विधि में देशान्तरों के अन्तर को ४ से गुणा करने पर जो फल प्राप्त होता है, यदि उसे स्थिर-समय के सूर्योदय-सूर्यास्तकाल में जोड़ने के स्थान में घटा दें

और घटाने के स्थान में जोड़ दें, तो स्थिर-समय की घड़ी के अनुसार मध्यम स्थानीय -समय का सूर्योदय अथवा सूर्यास्त आ जाता है। इसमें कालान्तर संस्कार करने से अधिक स्पष्ट सूर्योदय-सूर्यास्त काल आ जाता है। सूक्ष्म सूर्योदय तथा सूर्यास्त का काल जानने के लिए अपने-अपने स्थान के अक्षांश और सूर्यक्रान्ति के आधार पर गणना की जाती है। यह विधि भी हम आगे प्रदर्शित करेंगे।

भारत के पड़ोसी देशों के अक्षांश-देशान्तर

नीचे पाकिस्तान, श्रीलंका (सिंहल), नेपाल, भूटान और बंगलादेश के प्रमुख स्थानों के अक्षांश और देशान्तर प्रदर्शित किये गये हैं। इन सभी देशों के अक्षांश उत्तर और देशान्तर पूर्व हैं। निम्नलिखित बिन्दु दशमलव के हैं। उपयु'क्त विधि से इन्हें कलात्मक बनाया जा सकता है।

कोष्ठक संख्या – ४

स्थान	अक्षांश	देशान्तर	स्थान	अक्षांश	देशान्तर
अनुराधापुर (लं.)	८·२२	८०·२३	केगल्ल (लं.)	७·१५	८० २०
अन्नपूर्णाबाजार (ने.)	२८·३५	८३·५७	कैण्डी (लं.)	७·१८	८०·४०
अम्ब (पा.)	३४·२०	७२·५२	कैम्पबेलपुर (पा.)	३३·४७	७२·२३
इस्लामाबाद (पा.)	३३·४४	७३·१०	कोमिल्ला (बं.)	२३·२५	९१·१३
एवटाबाद (पा.)	३४·०९	७३·१५	कोलम्बो (लं.)	६·५६	७९·५६
ओखलढुंगा (ने.)	२७·३४	८६·५०	कोहाट (पा.)	३३·३६	७१·२९
कंचनजंघा (ने.)	२७·४२	८८·११	क्वेटा (पा.)	३०·१२	६७·००
कपिलवस्तु (ने.)	२७·५०	८२·७५	खुलना (बं.)	२२·४९	८९·३७
करांची (पा.)	२४·५१	६७·०४	खैबरपास (पा.)	३४·०६	७१·०५
कलात (पा.)	२५·२१	६४·०३	खैरपुर (पा.)	२७·२८	६८·४४
कलाम (पा.)	३५·२७	७२·३०	गुजरात (पा.)	३२·३६	७४·०५
कलूतारा (लं.)	६·३४	७९·५४	गुजरांवाला (पा.)	३२·१०	७४·१४
काठमाण्डू (ने.)	२७·४२	८५·१२	गैली (ल.)	६·०१	८०·१४
कुरुनेगला (लं.)	७·३१	८०·२२	गोरखा (ने.)	२७·५५	८४·३०
कुसमा (ने.)	२८·१६	८३·४०	चटगांव (बं.)	२२·२१	९१·५३
कुस्तिया (बं.)	२३·५५	८९·१०	चित्राल (पा.)	३५·४८	७१·५२

स्थान	अक्षांश	देशान्तर	स्थान	अक्षांश	देशान्तर
जाफना (लं.)	९·१७	७९·५७	फोर्टसण्डेमान (पा.)	३१·२०	७६·३१
जलेश्वर (ने.)	२६·६७	८५·७६	वदुल्ला (लं.)	६·५९	८१·०५
जुमला (ने.)	२९.१७	८२·१३	वन्नू (पा.)	३३·००	७०·३९
जैकवावाद (पा.)	२८·१७	६८·२६	वहावलपुर (पा.)	२८·२४	७१·४७
जैसोर (वं.)	२३·१०	८९·१०	वारीसाल (वं.)	२२·४३	९०·२४
झंग (पा.)	३१·१६	७२·२२	वोगरा (वं.)	२४·५१	८९·२६
झेलम (पा.)	३२·३५	७३·४७	भातगांव (ने.)	२७·३९	८५·२२
डेरा इस्माइल खां(पा.)	३१·५१	७०·५६	मतारा (लं.)	५·५७	८०·३३
डेरा गाजी खां (पा.)	३०·०४	७०·४९	मतेल (लं.)	७·२८	८०·३७
ढाका (वं.)	२३·४३	९०·२६	मन्नार (लं.)	८·५९	७९·५५
तंगेल (वं.)	२४·१४	८९·५६	मरदान (पा.)	३४·१०	७२·०३
थिम्फू (भू.)	२७·३२	८९·५३	मालकन्द (एजेन्सी पा.)	३४·३४	७१·५८
दिनाजपुर (वं.)	२५·३७	८८·४०	मियांवाली (पा.)	३२·३५	७१ ३३
दिर (पा.)	३५·१८	७१·५९	मिरमशाह (पा.)	३३·००	७०·०४
धनकुट्टा (ने.)	२६·५५	८७·२०	मीरपुर खास (पा.)	२५·३३	७९·०५
धौलागिरि (ने.)	२९ ११	८३·००	मुक्तिनाथ (ने.)	२८·५४	८३·४९
नवावशाह (पा.)	२६·०८	६८·२८	मुजफ्फरगढ़ (पा.)	३००५	७१·१४
नुवाराएलिया (लं.)	६·५९	८०·४७	मुलतान (पा.)	३०·१२	७१·३१
नेपालगंज (ने.)	२७·५९	८१·४०	मेमनसिंह (वं.)	२४·४६	९०·२७
पटुआखाली (वं)	२२·२०	९० २२	मोनरागला (लं.)	६·५२	८१·२२
पवना (वं.)	२४·०१	८९ १८	मोण्टगुमरी (पा.)	३०·५८	७३·२१
परचिनार (पा.)	३३·५५	७०·००	रत्नपुरा (लं.)	६·४२	८० २४
पलपा (ने.)	२७·५४	८३·२५	रंगपुर (वं.)	२५·४५	८९·१८
पाटन (ने.)	२७·३८	८५·१३	रंगमती (वं.)	२२·३८	९२·१५
पिशिन (पा.)	३०·३६	६६·५९	राजशाही (वं.)	२४·२२	८८·३९
पुट्टलम् (लं.)	८·०२	७९·५०	रावलपिण्डी (पा.)	३३·३७	७३·०६
पेशावर (पा.)	३४·०२	७१·३७	रुकुमकोट (ने.)	२८·३४	८२·४०
पोखरा (ने.)	२८·१७	८३·५८	लरकाना (पा.)	२७·३३	६८·१५
फरीदपुर (वं.)	२३·३६	८९·५३	लायलपुर (पा.)	३१.४४	७३·०५

स्थान	अक्षांश	देशान्तर	स्थान	अक्षांश	देशान्तर
लाहौर (पा.)	३१·३७	७४·२६	सिबि (प.)	२९·३०	६७·५५
लोरलइ (पा.)	३०·२४	६८·३६	सियालकोट (पा.)	३२·३१	७४·३३
वाना (पा.)	३२·१५	६९·३६	सिलगढ़ी (ने.)	२९·१२	८१·०६
विराटनगर (ने.)	२६·४५	८७·२६	सिलहट (वं.)	२४·५३	९१·५५
वीरगंज (ने.)	२७·०६	८४·९८	सैल्याना (ने.)	२८·२४	८२·१५
शेखूपुरा (पा.)	३१·३०	७४·००	हम्बन्तोता (लं)	६·०७	८१·०७
सक्खर (पा.)	२७·४२	६८·५५	हैदराबाद (सिन्ध पा.)	२५·२५	६८·३८

अन्य विदेशों के अक्षांश-देशान्तर

नीचे विश्व के कुछ प्रमुख नगरों के अक्षांश, देशान्तर और उन देशों के स्थिर-समय के देशान्तर दिये जा रहे हैं। यहाँ अक्षांश और देशान्तर अंश-कलाओं में प्रदर्शित हैं। कई देशों का स्थिर समय बदलता रहता है। अतः तात्कालिक स्थिति का ज्ञान कर लेना चाहिए।

कोष्ठक संख्या-५.

नगर	देश	अक्षांश	देशान्तर	उस देश के स्थिर समय का देशान्तर
		अं. क.	अं क.	अं. क.
अदन	अरब	१२·४६ उ.	४५·२ पू.	४५·००
इस्तम्बुल	टर्की	१४·०० उ.	२९·०० पू.	३०·००
ओस्लो	नॉर्वे	५९·५४ उ.	१०·४३ पू.	१०·००
कन्दहार	अफगानिस्तान	३१·३७ उ.	६५·३० पू.	६७·३०
काबुल	,,	३४·३५ उ.	५६·०० पू.	६७·३०
काहिरा	मिश्र	३०·२ उ.	३१·१५ पू.	३०·००
कोपेनहेगेन	डेनमार्क	५५·४० उ.	१२·३५ पू.	१२·३०
कोलम्बिया	अमेरिका	४·०० उ.	७५·०० प.	७३·००
जेनेवा	स्विट्जरलैण्ड	४६·१३ उ.	६·७ प.	१५·००
जेरुशलेम	इजरायल	३१·४६ उ.	३५·१४ पू.	३०·००
टोकियो	जापान	३५·४० उ.	१३६·३२ पू.	१३५·००
तेहरान	ईरान	३५·४१ उ.	५१·२५ पू.	५२·३०
	नेपाल	—	—	८५·०० पू.

नगर	देश	अक्षांश	देशान्तर	देश के स्थिर-समय का देशान्तर
		अं. क-	अं- क-	अं क-
नैरोबी	केन्या	१.१८ द.	३६·५२ पू.	४५ ००
न्यूयार्क	अमेरिका	४१·६ उ.	७४·०० प.	७३·००
—	पाकिस्तान	—	—	७५·०० पू.
पेरिस	फ्रांस	४८·५० उ.	२·२० पू.	१५·००
प्राग	चेकोस्लोवाकिया	५०·५ उ.	१४ २६ पू.	१६·००
बगदाद	इराक	३३·२० उ.	४४·२७ पू.	४५·००
र्बलिन	प. जर्मनी	५२·४५ उ.	१३·२४ पू.	१५·००
बीजिंग	चीन	३९·५५ उ.	११६·२४ पू.	१२०·००
बुखारेष्ट	रूमानिया	४४·२५ उ.	२६·५ पू.	२५·००
बुडापेस्ट	हंगरी	४७·२९ उ.	१९·३ पू.	१९·००
बैंगकाक	श्याम	१३·५ उ.	१००·४ पू.	१०५·००
मक्का	अरब	२१·२५उ.	३९·५४ पू.	४५·००
मास्को	रूस	५५·५५ उ.	३७·३७ पू.	६२·३०
माण्डले	बर्मा	२१·३५ उ.	९६·४ पू.	९६·००
रंगून	बर्मा	१६·४६ उ.	९६·१३ पू.	९६·००
रोम	इटली	४१·५४ उ.	१२·२७ पू.	१५·००
लन्दन	इंगलैण्ड	५१·३२ उ.	०·३ प.	००·००
लिस्बन	पुर्तगाल	३८·४२ उ.	९·८ प.	००·००
लेनिनग्राद	रूस	५९·५६ उ.	३८·८ पू.	६२·३०
वारसा	पोलैण्ड	५२·१४ उ.	२१·७ पू.	२०·००
वाशिङ्गटन	अमेरिका	३८·५५ उ.	७७·४ प.	७३·००
शंघाई	चीन	३१·१३ उ.	१२१·२६ पू.	१२०·००
—	सिंहल (श्रीलंका)	—	—	८१·०० पू.
ह्रांगकांग	चीन	२१·१६ उ.	११४·९ पू.	१२०·००

वेलान्तर सारणी

इस सारणी में धन (+) चिन्ह से लगातार धन तथा ऋण (—)चिन्ह से लगातार ऋण समझना चाहिए। देशांतर संस्कार के बाद मिनट रूप यह संस्कार करने पर स्पष्ट स्थानीय समय प्राप्त हो जाता है। वेलान्तर अंग्रेजी तारीखों के अनुसार प्रदर्शित है। (देवकीनन्दन खेडवाल, भारतीय कालगणना पृ० 48)।

कोष्ठक-संख्या छः

तारीख	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
१	+४	+१४	+१२	+३	−३	−३	+३	+६	+०	− ९	−१६	−१२
२	४	१४	१२	३	३	३	४	६	−०	१०	१६	११
३	४	१४	१२	२	४	२	४	६	०	१०	१६	११
४	५	१४	१२	२	४	२	४	६	−१	१०	१६	१०
५	५	१४	११	२	४	२	४	६	१	११	१६	१०
६	६	१४	११	२	४	२	४	६	१	११	१६	१०
७	६	१४	११	१	४	२	४	६	२	११	१६	९

तारीख	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
८	७	१५	१०	१	४	१	४	६	२	११	१६	९
९	७	१५	१०	१	४	१	४	५	२	१२	१६	८
१०	८	१५	१०	१	४	१	५	५	२	१२	१६	८
११	८	१५	१०	१	४	१	५	५	३	१२	१६	७
१२	८	१५	१०	०	४	१	५	५	३	१२	१६	७
१३	९	१५	९	०	४	०	५	५	३	१३	१६	६
१४	९	१४	९	०	४	०	५	५	४	१३	१६	६

तारीख	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्तूबर	नवम्बर	दिसम्बर
१५	१०	१४	९	०	४	०	५	४	४	१३	१६	५
१६	१०	१४	८	—०	४	+०	६	४	४	१४	१५	५
१७	१०	१४	८	—१	४	०	६	४	५	१४	१५	४
१८	११	१४	८	१	४	०	६	४	५	१४	१५	४
१९	११	१४	७	१	४	+१	६	४	५	१४	१५	३
२०	११	१४	७	१	४	१	६	४	६	१४	१५	३
२१	१२	१४	७	२	४	१	६	४	६	१५	१५	२
२२	१२	१४	६	२	४	१	६	३	६	१५	१४	२

तारीख	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
२३	१२	१४	६	२	४	१	६	३	७	१५	१४	१
२४	१२	१४	६	२	४	२	६	३	७	१५	१४	०
२५	१२	१३	५	२	४	२	६	३	७	१६	१४	+१
२६	१३	१३	५	२	३	२	६	२	८	१६	१३	१
२७	१३	१३	५	३	३	२	६	२	८	१६	१३	२
२८	१३	१२	४	३	३	२	६	२	८	१६	१३	२
२९	१३	१२	४	३	३	३	६	१	९	१६	१२	३
३०	१४	×	४	३	३	३	६	१	९	१६	१२	३
३१	१४	×	४	×	३	×	६	१	×	१६	×	३

स्थिर-समय से स्थानीय-समय लाने का उदाहरण

मान लीजिए १४ जनवरी के दिन के १० बजे दिल्ली का स्थानीयसमय जानना है। यहां सर्वप्रथम देशान्तरसारणी से दिल्ली का देशान्तर ७७·१२ ज्ञात किया। यह दशमलव अंकों में है। इसलिए ·१२ को ६० से गुणा और १०० से भाग दिया तो लगभग कलात्मक ७ आया। अर्थात् दिल्ली का अंश कलात्मकदेशान्तर करीब ७७·७ हुआ। इसे भारत के स्थिरदेशान्तर ८२·३० में घटाने से शेष ५·२३ हुआ। इसे ४ से गुणा करने पर २१ मि. ३२ सैकेण्ड हुआ। दिल्ली का देशान्तर ८२·३० से कम होने से दिल्ली स्थिर देशान्तर रेखा से पश्चिम में है। अतः १० घ. ०० मि. में ३२ से. घटाने से ९/३८/२८ घ. मि. सै. शेष रहा। यह मध्यमस्थानीय समय हुआ। इसमें वेलान्तर सारणी से १४ जनवरी का अन्तर+९ मि. जोड़ देने से ९ घ. ४७ मि. २८ से. दिल्ली का स्थानीय समय हुआ। जो स्थान देशान्तर रेखा से पूर्व में हैं, अर्थात् जिनका देशान्तर ८२·३० से अधिक है, वहां उस स्थान के देशान्तर में ८२·३० घटाकर ४ से गुणा कर वेलान्तर संस्कार करने से स्थानीय ज्ञात समय होता है।

स्थानीय-समय से स्थिर-समय लाने का उदाहरण

मान लीजिए २४ अप्रैल को १०·३० बजे दिन पटना का स्थानीय-समय है। इस समय स्थिर-समय जानना है। इसलिए सर्वप्रथम १०·३० में उस दिन के वेलान्तर —२ मि. का विपरीत संस्कार किया अर्थात् जोड़ दिया, तो १०·३२ हुआ। पटना का देशान्तर ८५·१३ है। इसमें ८२·३० स्थिर देशान्तर घटाने से २·४३ शेष रहा। इसे ४ से गुणा करने पर १० मि. ५२ से. हुआ। स्थिर देशान्तर रेखा पटना से पश्चिम में होने से इस अन्तर को पटना के स्थानीय समय में घटा दिया तो १० घं. २१ मि. २८ से. स्थिर समय हुआ। स्थिरदेशान्तररेखा पूर्व में हो तो उपर्युक्त रीति से लाये गये अन्तर को विपरीत वेलान्तर संस्कार कर स्थानीय समय में जोड़ देने से स्थिरसमय हो जाता है।

सूर्योदय और सूर्यास्त काल का ज्ञान

सूर्योदय तथा सूर्यास्त स्थानीय समय के अनुसार होते हैं। यदि किसी अन्य स्थान के सूर्योदय अथवा सूर्यास्त काल का ज्ञान हो, जैसा कि पंचांगों में लिखा रहता है, तो स्थानीय सूर्योदय और सूर्यास्त का ज्ञान सरलता से किया जा सकता है। जिस स्थान का सूर्योदय ज्ञात हो उसे क मानिए और जिस स्थान का सूर्योदय जानना हो उसे ख मानिए। अब क और ख के देशान्तरों का अन्तर कर उसे ४ से गुणा कीजिए। फलतः मिनट-सेकेण्ड रूप अन्तर होगा। क से ख पूर्व में हो तो क के सूर्योदय-सूर्यास्त काल में से इस अन्तर को घटा दें। क से ख पश्चिम में हो तो ज्ञात सूर्योदय-सूर्यास्त काल में इस अन्तर को जोड़ दें। इस प्रकार स्थानीय सूर्योदय-सूर्यास्त काल स्थानीयसमय के अनुसार हो जाता है। स्थिरसमय के अनुसार स्थानीय सूर्योदय-सूर्यास्त जानने के लिए स्थानीयसमय से स्थिरसमय निकालने की उपयु॑क्त विधि का प्रयोग करना चाहिए।

सूक्ष्म सूर्योदय-सूर्यास्त साधन सारणियां

इस प्रकार ज्ञात किया गया सूर्योदय-सूर्यास्त स्थूल होता है। सूक्ष्म सूर्योदय-सूर्यास्त का समय जानने के लिए अभीष्ट स्थान के अक्षांश और अभीष्ट दिन की सूर्यक्रान्ति के आधार पर गणना की जाती है। अतः आगे इसके लिए उपयोगी सारणियां प्रदर्शित की जा रही हैं। भारत में प्रचलित सभी दिनांक चान्द्र अथवा निरयण सौर हैं। अतः क्रान्ति-सारणी के लिए इनका स्थायी उपयोग नहीं हो सकता। अतः सुविधा के लिए सायन सौर होने से अंग्रेजी दिनांक का प्रयोग किया गया है।

(देवकीनन्दन खेडवाल, भारतीय कालगणना पृ० ४८)

कोष्ठक संख्या—सात

क्रान्तिसारणी

तारीख	जनवरी दक्षिण	फरवरी दक्षिण	मार्च दक्षिण	अप्रैल उत्तर	मई उत्तर	जून उत्तर	जुलाई उत्तर	अगस्त उत्तर	सितम्बर उत्तर	अक्टूबर दक्षिण	नवम्बर दक्षिण	दिसम्बर दक्षिण
१	२३/६	१७/२५	७/४०	४/१०	१४/४५	२१/५५	२३/११	१८/१६	८/४०	२/४५	१४/५	२१/४०
२	२३/१	१७/१०	७/१५	४/३०	१५/५	२२/५	२३/६	१८/३	८/१५	३/१०	१४/२७	२१/४०
३	२२/५६	१६/५३	६/५४	४/५५	१५/२०	२२/१०	२३/२	१७/४५	७/५५	३/३५	१४/४५	२१/५८
४	२२/५०	१६/३७	६/३०	५/१८	१५/४०	२२/१८	२२/५८	१७/३०	७/३२	३/५८	१५/५	२२/५
५	२२/४४	१६/१८	६/८	५/४०	१६/०	२२/२७	२२/५४	१७/१५	७/१०	४/२०	१५/२३	२२/१५
६	२२/३७	१६/१	५/४५	६/५	१६/१५	२२/३३	२२/४८	१७/००	६/५०	४/४५	१५/४०	२२/२२
७	२२/३०	१५/४३	५/२२	६/२८	१६/३०	२२/४०	२२/४२	१६/४५	६/३०	५/५	१६/०	२२/३०
८	२२/२३	१५/२३	४/५८	६/५०	१६/५०	२२/४५	२२/३६	१६/२७	६/५	५/३०	१६/१८	२२/३६

तारीख	जनवरी दक्षिण	फरवरी दक्षिण	मार्च दक्षिण	अप्रैल उत्तर	मई उत्तर	जून उत्तर	जुलाई उत्तर	अगस्त उत्तर	सितम्बर उत्तर	अक्टूबर दक्षिण	नवम्बर दक्षिण	दिसम्बर दक्षिण
९	१२/१५	१५/५	४/३५	७/१५	१७/५	२२/५०	२२/३०	१६/१०	५/४५	५/५३	६/३५	१२/२५
१०	२२/७	१४/४५	४/१४	७/३५	१७/२०	२२/५५	२२/२२	१५/५५	५/२०	६/१५	१६/५३	२२/५०
११	२१/५८	१४/२६	३/४८	७/५५	१७/३८	२३/१	२२/१५	१५/३५	४/५८	६/३८	१७/१०	२२/५५
१२	२१/४९	१४/७	३/२५	८/१५	१७/४५	२३/५	२२/७	१५/१५	४/३५	७/०	१७/२५	२३/०
१३	२१/३९	१३/४५	३/३	८/४०	१८/८	२३/१०	२१/५८	१५/०	४/१२	७/२५	१७/४२	२३/५
१४	२१/२९	१३/२६	२/३७	९/०	१८/२३	२३/१३	२१/५०	१४/४०	३/५०	७/४५	१७/५९	२३/१०
१५	२१/१९	१३/६	२/१४	९/२५	१८/३८	२३/१७	२१/४०	१४/२५	३/२८	८/१०	१८/१५	२३/२३
१६	२१/८	१२/४६	१/५०	९/४५	१८/५०	२३/१९	२१/३४	१४/५	३/५	८/३०	१८/३०	२३/१६

तारीख	जनवरी दक्षिण	फरवरी दक्षिण	मार्च दक्षिण	अप्रैल उत्तर	मई उत्तर	जून उत्तर	जुलाई उत्तर	अगस्त उत्तर	सितम्बर उत्तर	अक्टूबर दक्षिण	नवम्बर दक्षिण	दिसम्बर दक्षिण
१७	२०/५७	१२/२५	१/२८	१०/५	१९/५	२३/२१	२१/२३	१३/४५	२/४०	८/५५	१८/४५	२३/१६
१८	२०/४५	१२/५	१/५	१०/३०	१९/२०	२३/२३	२१/१३	१३/२३	२/१५	६/१५	१९/००	२३/२२
१९	२०/३३	११/४४	०/४५	१०/५०	१९/३०	२३/२५	२१/४	१३/८	१/५५	९/३७	१९/१५	२३/२३
२०	२०/२१	११/२३	०/१८	११/१०	१९/४५	२३/२६	२०/५३	१२/५०	१/३०	१०/०	१९/३०	२३/२४
२१	२०/८	११/३	उत्तर ०/८	११/३०	१९/५८	२३/२६	२०/४०	१२/३०	१/८	१०/२०	१९/४०	२३/२५
२२	१९/५५	१०/३८	०/३०	११/५०	२०/१०	२३/२७	२०/२३	१२/१०	०/४५	१०/४०	१९/५५	२३/२६
२३	१६/४१	१०/१६	०/५४	१२/१०	२०/२१	२३/२७	२०/१८	११/४५	०/२०	११/२	२०/८	२३/२६

तारीख	जनवरी दक्षिण	फरवरी दक्षिण	मार्च दक्षिण	अप्रैल उत्तर	मई उत्तर	जून उत्तर	जुलाई उत्तर	अगस्त उत्तर	सितम्बर उत्तर	अक्टूबर दक्षिण	नवम्बर दक्षिण	दिसम्बर दक्षिण
२४	१९/२८	९/५५	१/१४	१२/२२	२०/३४	२३/२६	२०/६	११/३०	दक्षिण ०/५	११/२५	२०/२०	२३/२६
२५	१९/१३	९/३३	१/४५	१२/४१	२०/४५	२३/२५	१९/५५	११/१०	०/३०	११/४५	२०/३३	२३/२६
२६	१८/५९	९/११	२/५	१३/१०	२०/५६	२३/२४	१९/४०	१०/४५	०/५०	१२/५	२०/४५	२३/२६
२७	१८/४४	८/४९	२/३०	१३/३०	२१/८	२३/२२	१९/२८	१०/२५	१/१५	१२/२५	२०/५६	२३/२४
२८	१८/२८	८/२६	२/५२	१३/५०	२१/१८	२३/२०	१९/१५	१०/५	१/३८	१२/४५	२१/८	२३/२४
२९	१८/१३	८/५	३/१७	१४/१०	२१/२७	२३/१८	१९/०	९/४५	२/१	१३/८	२१/१८	२३/२२
३०	१७/५७	×	३/४०	१४/३०	२१/३७	२३/१५	१८/४५	९/२५	२/२५	१३/३०	२१/३०	२३/२०
३१	१७/४०	×	४/५	×	२१/४५	×	१८/३०	९/०	×	१३/४५	×	२३/१५

कोष्ठक संख्या :– आठ **चरसारणी** **अक्षांशाः**

०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
१	०	०	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
२	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	२	३
३	०	०	१	१	१	१	१	२	२	२	२	३	३	३	३	३	४	४
४	०	१	१	१	१	२	२	२	२	३	३	३	४	४	४	५	५	५
५	०	१	१	१	२	२	२	३	३	४	४	४	५	५	५	६	६	७
६	१	१	१	२	२	३	३	३	४	४	५	५	६	६	६	७	७	८
७	१	१	१	२	२	३	३	४	४	५	५	६	६	७	८	८	९	९
८	१	१	२	२	३	३	४	५	५	६	६	७	७	८	९	९	१०	१०
९	१	१	२	३	३	४	४	५	६	६	७	८	८	९	१०	११	११	१२
१०	१	१	२	३	४	४	५	६	६	७	८	९	९	१०	११	१२	१२	१३
११	१	२	२	३	४	५	५	६	७	८	९	९	१०	११	१२	१३	१४	१४
१२	१	२	३	३	४	५	६	७	८	९	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

अक्षांशाः

क्रान्त्यंशाः																		
१३	१	२	३	४	५	६	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
१४	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१९
१५	१	२	३	४	५	६	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१८	१९	२०
१६	१	२	३	५	६	७	८	९	१०	१२	१३	१४	१५	१६	१८	१९	२०	२१
१७	१	२	४	५	६	७	९	१०	११	१२	१४	१५	१६	१७	१९	२०	२१	२२
१८	१	३	४	५	७	८	९	१०	१२	१३	१४	१६	१७	१९	२०	२१	२३	२४
१९	१	३	४	६	७	८	१०	११	१३	१४	१५	१७	१८	२०	२१	२३	२४	२६
२०	१	३	४	६	७	९	१०	१२	१३	१५	१६	१८	१९	२१	२२	२४	२६	२७
२१	२	३	५	६	८	९	११	१२	१४	१६	१७	१९	२०	२२	२४	२५	२७	२९
२२	२	३	५	६	८	१०	११	१३	१५	१६	१८	२०	२१	२३	२५	२७	२८	३०
२३	२	३	५	७	९	१०	१२	१४	१५	१७	१९	२१	२२	२४	२६	२८	३०	३२
२४	२	४	५	७	९	११	१३	१४	१६	१८	२०	२२	२४	२६	२७	२९	३१	३३

कोष्ठक संख्या :—नौ **चरसारणी** **अक्षांशाः**

क्रान्त्यंशाः

०	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६
१	१	१	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	३	३	३	३
२	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	६	६
३	४	४	५	५	५	५	६	६	६	६	७	७	७	८	८	८	८	९
४	६	६	६	६	७	७	७	८	८	९	९	९	१०	१०	१०	११	११	१२
५	७	७	८	८	९	९	९	१०	१०	११	११	१२	१२	१३	१३	१४	१४	१५
६	८	९	९	१०	१०	११	११	१२	१२	१३	१३	१४	१४	१५	१६	१६	१७	१८
७	१०	१०	११	११	१२	१३	१३	१४	१४	१५	१६	१६	१७	१८	१८	१९	२०	२०
८	११	१२	१२	१३	१४	१४	१५	१६	१६	१७	१८	१९	१९	२०	२१	२२	२३	२३
९	१३	१३	१४	१५	१५	१६	१७	१८	१९	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२५	२६
१०	१४	१५	१६	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
११	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
१२	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३१	३२	३३	३४	३६

अक्षांशाः

क्रान्त्यंशाः

१३	१८	१९	२०	२१	२२	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३१	३२	३३	३४	३६	३७	३९
१४	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२७	२८	२९	३०	३१	३३	३४	३६	३७	३९	४०	४२
१५	२१	२२	२४	२५	२६	२७	२९	३०	३१	३३	३४	३६	३७	३९	४०	४२	४३	४५
१६	२३	२४	२५	२७	२८	२९	३१	३२	३४	३५	३७	३८	४०	४१	४३	४५	४६	४८
१७	२४	२६	२७	२८	३०	३१	३३	३४	३६	३७	३९	४१	४२	४४	४६	४८	४९	५१
१८	२६	२७	२९	३०	३२	३३	३५	३६	३८	४०	४२	४३	४५	४७	४९	५१	५३	५५
१९	२७	२९	३०	३२	३४	३५	३७	३९	४०	४२	४४	४६	४८	५०	५२	५४	५६	५८
२०	२९	३०	३२	३४	३६	३७	३९	४१	४३	४५	४७	४९	५१	५३	५५	५७	५९	६१
२१	३०	३२	३४	३६	३८	३९	४१	४३	४६	४८	४९	५१	५३	५६	५८	६०	६२	६५
२२	३२	३४	३६	३८	३९	४१	४३	४५	४६	४९	५१	५३	५५	५७	५९	६३	६६	६८
२३	३४	३६	३८	३९	४२	४४	४६	४८	५०	५२	५४	५६	५८	६२	६४	६७	६९	७२
२४	३५	३७	३९	४१	४४	४७	४८	५०	५२	५५	५७	६०	६२	६५	६७	७०	७३	७६

४६. क्रान्तिसारणी तथा चरसारणी का उपयोग

अंग्रेजी मास तथा दिनांक के अनुसार सूर्य की क्रान्ति अंशकलाओं में ज्ञात करने के लिए उपर्युक्त क्रान्तिसारणी दी गयी है। इसके वाद स्थानीय अक्षांश तथा सूर्य की दैनिक क्रान्ति के आधार पर चरसारणी प्रदर्शित की गयी है। इसका फल मिनटों में है। चरसारणी केवल एक अक्षांश से ३६ अक्षांश तक के स्थानों के लिए दी गयी है। इसमें सम्पूर्ण भारत, श्रीलंका, (सिंहल) पाकिस्तान, नेपाल, वंगलादेश और वर्मा शामिल हैं। ३६ अक्षांश तक उत्तर और दक्षिण के संसार के सभी देशों के लिए इस सारणी का उपयोग किया जा सकता है।

४७. सूक्ष्म सूर्योदय तथा सूर्यास्त साधन

भारत का अक्षांश उत्तर है। सूर्य की उत्तर-क्रान्ति हो तो उपर्युक्त सारणी से प्राप्त अन्तर को ६ घण्टों में घटाने से सूर्योदय होगा। इसी अन्तर को ६ घण्टों में जोड़ने से सूर्यास्त होगा। दक्षिण-क्रान्ति में प्राप्त चरान्तर मिनटों को ६ घण्टों में जोड़ने से सूर्योदय और घटाने से सूर्यास्त होता है।

दक्षिण अक्षांश वाले स्थान में उत्तर-क्रान्ति हो, तो प्राप्त चरान्तर मिनटों को ६ घण्टों में जोड़ने से सूर्योदय और घटाने से सूर्यास्त होता है। दक्षिण-क्रान्ति में प्राप्त चरान्तर मिनटों को ६ घण्टों में घटाने से सूर्योदय तथा जोड़ने से सूर्यास्त होता है।

उदाहरण

मान लीजिए १४ जनवरी को दिल्ली का सूर्योदय और सूर्यास्त ज्ञात करना है तो १४ जनवरी की सूर्यक्रान्ति-सारणी द्वारा २१/२९ अंशादि दक्षिण-क्रान्ति ज्ञात की। दिल्ली का अक्षांश सारणी में २८·३८ है। यह दशमलव भिन्न में हैं। अतः ३८ को ३ से गुणा और ५ से भाग देने पर लगभग २३ कला प्राप्त हुई। अतः दिल्ली का अंश-कलात्मक अक्षांश २८·२३ हुआ। चरसारणी में २१ क्रान्ति और २८ अक्षांश के समकोष्ठक में ४८ मिनट प्राप्त होता है। २९ अक्षांश पर यह अन्तर ४९ मिनट है। २८·२३ अक्षांश पर यह अन्तर अनुपात से ४८ मि. २३ से. हुआ। परन्तु यह २१ क्रान्ति पर है। हमें अभीष्ट हैं २१/२९ क्रान्ति पर। अतः २१ क्रान्ति के अन्तर को २२ क्रान्ति के अनुसार उपलब्ध ५१ मि. में घटाने से २ मि. अन्तर हुआ। अनुपात से २१/२९ पर ५६ से० फल मिला। इसे पूर्वफल ४८ मि० २३ से० में जोड़ने से स्पष्ट चर फल ४९ मि० १९ से० हुआ। दक्षिण-क्रान्ति होने से इसे ६ घण्टों में जोड़ने पर ६/४९/१९

बजे सूर्योदय हुआ। इसी चरफल को ६/०० में घटाने से ५/१०/४१ बजे सूर्यास्त हुआ। यह लोकल घड़ी का समय है। अतः इसे स्थिर-समय की घड़ी में बदलने के लिए पूर्वोक्त क्रिया करनी चाहिए।

दिनमान-साधन

सूर्योदय से सूर्यास्त तक के समय को दिनमान कहा जाता है। यह क्रान्ति और अक्षांश के अनुसार प्रतिस्थान प्रतिदिन भिन्न-भिन्न होता है। इसे जानने के लिए सर्वप्रथम सूर्यास्त का साधन कर उसे दुगुना कर लें। यह घण्टा-मिनटों में दिनमान होगा। घटी-पल में जानने के लिए इसे ५ से गुणा कर २ का भाग दें तो घटी-पलात्मक प्राप्त दिनमान होगा। दिनमान यदि घण्टा-मिनटों में हो, तो उसे २४ में घटाने से घण्टा-मिनटों में रात्रिमान होगा। घटी-पलात्मक दिनमान को ६० में से घटाने पर घटीपलात्मक रात्रिमान प्राप्त होगा।

चान्द्रमान—तिथि

कालगणना की चान्द्रपद्धति का लोक-जीवन के साथ व्यापक सम्बन्ध है। पीछे यह बताया गया है कि सूर्य की अपेक्षा चन्द्र शीघ्रगति है। यह भी बताया गया है कि सृष्टि के आरम्भ में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि थी, तथा सूर्यादि सभी ग्रह अश्विनीनक्षत्र तथा मेषराशि के प्रारम्भ-बिन्दु में थे। इस प्रकार उस समय अमावस्या का अन्त और शुक्ल-प्रतिपदा का प्रारम्भ था। जब भी सूर्य और चन्द्र की राश्यादि पूर्णतः बराबर होती है, तब अमावस्या का अन्त होता है। शीघ्रगति होने से चन्द्रमा सूर्य से प्रतिदिन आगे बढ़ता जाता है। इस प्रकार जब सूर्य और चन्द्र का अन्तर १२ अंश के बराबर होता है, तो एक तिथि समाप्त हो जाती है। इसे ही चान्द्रदिन कहा जाता है। चान्द्र दिन २१३२० असु के लगभग होता है, जो सावनदिन से छोटा है। इस प्रकार शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी और चतुर्दशी तिथियां सम्पन्न होती हैं। इसके बाद पूर्णिमा तिथि आती है। जब सूर्य और चन्द्र का अन्तर १२ × १५ = १८० अंश होता है, तब दोनों आकाश में आमने-सामने हो जाते हैं। इसके बाद कृष्णपक्ष प्रारम्भ हो जाता है, और पूर्ववत् १२-१२ अंश के अन्तर से प्रतिपदा आदि तिथियाँ सम्पन्न होती हैं। अमावस्या के अन्त में चन्द्रमा पीछे से आकर पुनः सूर्य के बराबर हो जाता है। इस प्रकार तिथि की संख्या को १२ से गुणा करने पर

सूर्य और चन्द्र का अंशात्मक अन्तर मालूम हो जाता है। कृष्णपक्ष की तिथि-संख्या में १५ जोड़ कर १२ से गुणा करना चाहिए। वेद में ३० तिथियों के दिन और रात के अलग-अलग नाम मिलते हैं ; वे अव प्रचलित नहीं हैं।

पक्ष

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अमावस्या और पूर्णिमा मास के मुख्य दो पर्व हैं। पक्ष कौनसा है, इसका ज्ञान बड़ी आसानी से हो जाता है। सन्ध्या समय जव चन्द्रमा दीखे तो शुक्ल पक्ष समझना चाहिए, और सन्ध्या समय यदि प्रथम अन्धकार हो कर विलम्ब से चन्द्रोदय हो, तो कृष्ण पक्ष समझना चाहिए। वैसे दोनों पक्षों में चांदनी और अन्धकार की मात्रा बरावर ही होती है। शुक्ल-कृष्ण नाम केवल प्रथम होने से है। शुक्लपक्ष को शुदि अर्थात् शुभदिन, तथा कृष्ण पक्ष को वदि अर्थात् वहुलदिन कहा जाता है। शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की रोशनी प्रतिदिन बढ़ती है। इसलिए उसे शुभपक्ष माना जाता है। इस प्रकार दो पक्षों का चान्द्रमास होता है।

मास

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मास में अमावस्या और पूर्णिमा दो मुख्य पर्व हैं। इसलिए चान्द्रमास की गणना भी दोनों पर्वों से प्रचलित है। उत्तर-भारत में चन्द्रमा की कला को ध्यान में रखते हुए पूर्णिमा से पूर्णिमा तक चान्द्रमास माना जाता है। अतः प्रथम कृष्ण-पक्ष फिर शुक्ल-पक्ष माना जाता है। इस प्रकार पूर्णिमा को मास सम्पन्न होता है। पूर्णिमा को पौर्णमासी भी कहा जाता है। इसका अर्थ है जिस तिथि को मास पूर्ण होता है।

ज्यौतिष के सभी सिन्द्धान्त-ग्रन्थ और दक्षिण-भारत में पहले शुक्ल-पक्ष फिर कृष्णपक्ष माना जाता है। इस प्रकार अमावस्या से अमावस्या तक मास माना जाता है। यह मत सृष्टि के आरम्भ को ध्यान में रखते हुए माना जाता है। क्योंकि सृष्टि के आरम्भ में पहले शुक्ल-पक्ष था। दोनों ही मत वेद में उपलब्ध हैं। एक विशेष बात यह है कि कृष्णादि-मास मानने वाले उत्तर-भारतीय भी चैत्र-शुक्ल-प्रतिपदा को ही संवत्सर अथवा वर्ष का आरम्भ मानते हैं। उपर्युक्त मतभेद के कारण प्रत्येक मास के कृष्णपक्ष को उत्तर-भारतीय अगले मास में, तथा दक्षिण-भारतीय पिछले मास में गिनते हैं। उनके अपने-अपने पंचागों में इसी प्रकार मास का नाम लिखा जाता है। उदाहरणतः जिस पक्ष

को उत्तर-भारत में चैत्रकृष्णपक्ष कहा जाता है, उसे दक्षिण-भारत में फाल्गुन-कृष्णपक्ष कहा जाता है। कृष्णजन्माष्टमी को उत्तर-भारत में भाद्र-कृष्णपक्ष कहा जाता है, परन्तु दक्षिण में उसे श्रावण कृष्णपक्ष में लिखा जाता है। दक्षिण में भी मानते उसी दिन हैं, परन्तु लिखने-कहने में भेद है। श्रीकृष्ण का जन्म उत्तर-भारत में हुआ था। इसलिए दक्षिण-भारतीय भी उसी परम्परा को मानते हैं।

इस प्रकार मास शुक्लादि माने या कृष्णादि, चान्द्रमास का मान २९ दिन ३१ घटी ५० पल ७ विपल ३० प्रतिविपल के तुल्य होता है। चान्द्रमास में तिथियां ३० होती हैं, परन्तु उनके नाम १५ ही हैं। इसलिए अमावस्या और पूर्णिमा से पुनः प्रतिपदा, द्वितीया आदि नाम ही व्यवहृत होते हैं। पंचांग में अमावस्या को ३० की संख्या से लिखा जाता है।

मासों के नाम

पीछे चन्द्रमा के विषय में लिखते समय कहा गया है कि पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए चन्द्रमा प्रतिदिन लगभग एक नक्षत्र पार करता है। इसे ही पचांग में दैनिक नक्षत्र के रूप में लिखा जाता है। इस चान्द्र-नक्षत्र और उपर्युक्त चान्द्र-तिथि के समन्वय के आधार पर चान्द्रमासों के नाम रखे गए हैं। अर्थात् चन्द्र के चित्रा-नक्षत्र में होते हुए जो पूर्णिमा होती है; उस पूर्णिमा वाले मास को चैत्र कहा जाता है। इसी प्रकार विशाखा से वैशाख, ज्येष्ठा से ज्येष्ठ, पूर्वाषाढ़ से आषाढ़, श्रवण से श्रावण, पूर्वभाद्र से भाद्र, अश्विनी से आश्विन, कृत्तिका से कार्त्तिक, मृगशिरा से मार्गशीर्ष, पुष्य से पौष, मघा से माघ और पूर्वफाल्गुनी से फाल्गुन नाम रखे गए हैं। इन नक्षत्रों में एक आगे भी कभी-कभी हो जाता है। इस सम्बन्ध मे एक श्लोक है:—

द्वे-द्वे चित्रावितारानां परिपूर्णेन्दुसङ्गमे।
मासाश्चैत्रादयोज्ञेया: पञ्चाद्रिदशमास्त्रिकैः॥

अर्थात्—चित्रा से प्रारम्भ कर दो-दो नक्षत्र आगे के चैत्र आदि मासों की पूर्णिमा में पड़ते हैं, परन्तु पांचवें, सातवें और दशवें मास की पूर्णिमा तीन नक्षत्र आगे पड़ती है। इस नियम से किसी मास की तिथि जान कर उस दिन का नक्षत्र भी जाना जा सकता है।

इस प्रकार अमावस्या से मास की समाप्ति मानने वाले भी, मास का नाम पूर्णिमा के आधार पर ही मानते हैं। चैत्र आदि मासों के प्राचीन नाम दूसरे हैं, जो वेद में

उपलब्ध होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभ, नभस्य, इष, ऊर्ज, सह, सहस्य, तप और तपस्य। इनमें क्रम से दो-दो नामों के छः जोड़े समान शब्दों से ही बने हैं। ये ऋतुओं का संकेत करते हैं। यद्यपि ये नाम चान्द्रमासों के थे, तथापि ऋतुओं का संकेत भी इन्हीं से किया जाता था। इस विषय में हम आगे अधिक विचार करेंगे।

चान्द्रवर्ष

बारह चान्द्र-मासों का एक चान्द्रवर्ष होता है। इसका मान ३५४ दिन २२ घटी १ पल और ३० विपल के बराबर होता हैं। यह वर्ष सावन और सौरवर्षों से छोटा होता है। इसका सम्बन्ध ऋतु-चक्र से नहीं है। अतः इसे ऋतुओं के अनुकूल बनाने के लिए सौरवर्ष के साथ इसका समन्वय किया जाता है। इसे हम आगे स्पष्ट करेंगे। इस्लामिक देश चान्द्रमान से ही वर्ष-गणना करते हैं। इसलिए उनके पर्व प्रति-वर्ष पीछे खिसकते जाते हैं, और सभी ऋतुओं में पड़ते हैं।

सौरमान

सूर्य की गति के आधार पर जो कालमान निश्चित किया गया है, उसे सौरमान कहा जाता है। सम्पूर्ण कालगणना का सौरमान ही मुख्य केन्द्र है, क्योंकि इसका सम्बन्ध ऋतुओं से है। वस्तुतः यह कालमान पृथ्वी की गति पर आधारित है; परन्तु सुविधा के लिए पृथ्वी की गति को सूर्य की गति मानलिया गया है। इस बात को भारत के प्राचीन-ज्योतिषी भी जानते थे। तभी उन्होंने सूर्य की गति को मानते हुए भी सावनदिन को भूदिन, भूवासर, कुदिन आदि कहा है, जिसका अर्थ है पृथ्वी का दिन। पारिभाषिक शब्दावली में उन्होंने कहीं भी सूर्य का सावन नहीं कहा है। इससे उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमते हुए, प्रतिदिन अपनी कक्षा पर एक अंश के लगभग चलती है। अतः पृथ्वी की गति के कारण भूकेन्द्रिक दृष्टि से सूर्य के एक अंश चलने को ही एक सौरदिन कहा जाता है। एक सौर दिन मध्यममान से २१९७६ असु का होता है। पीछे यह बताया गया है कि एक सावनदिन २१६५९ असु का होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सौरदिन, नाक्षत्र, चान्द्र और सावन, इन सभी दिनों से बड़ा होता है।

सौरमास

पृथ्वी की गति के कारण भूकेन्द्रिक दृष्टि से सूर्य के एक राशि अथवा ३० अंश चलने को सौर-मास कहा जाता है। स्पष्टमान से सौरमास न्यूनतम २९ दिन का तथा अधिकतम ३२ दिन का होता है। सृष्टि के आरम्भ में सूर्य मेष-राशि अथवा अश्विनी नक्षत्र के प्रारम्भ में था। अतः सौर-मास का आरम्भ मेष-राशि से माना जाता है। अर्थात् मेष की संक्रान्ति से सौर-मास का आरम्भ हो कर, १२ संक्रान्तियों के पश्चात् वर्ष पूरा होता है। सौर मासों के मेष, वृष आदि नामों के अतिरिक्त कोई अन्य नाम नहीं है। इसलिए चान्द्रमासों के साथ सामञ्जस्य करके उनके ही नाम सौरमासों के नाम पर रखे गये हैं। अर्थात् जिस शुक्लादि चान्द्रमास में मेष की संक्रान्ति पड़े उसे चैत्र कहा जाता है। इसी प्रकार आगे भी चलता है। उत्तरी-भारत में कृष्णादिमास मानने के कारण वैशाख में मेष-संक्रान्ति पड़ती है। अतः वहां सौरमास की संख्या चान्द्रमासः की संख्या से एक अंक पीछे रहती है।

वर्तमान में सौरमासों का कालमान इस प्रकार है :—

कोष्ठक संख्या—दस

मास।	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
दिन	३०	३१	३१	३१	३१	३०	२९	२९	२९	२९	२९	३०
घटी	५७	२५	३८	२७	०	२५	५२	२८	८	२७	५०	२२
पल	६	४६	१७	५६	४१	४९	४३	३२	३१	६	२८	३६

सौरवर्ष

सृष्टि के आरम्भ में पृथ्वी की कक्षा और विषुवन्मण्डल का सम्पात् अर्थात् योग अश्विनीनक्षत्र के आरम्भ में था। बाद में पृथ्वी की कक्षा और विषुवन्मण्डल का सम्पात् पीछे की ओर खिसकने लगा। इससे सौरवर्ष की गणना के दो भेद हो गये। अश्विनीनक्षत्र से जो वर्षमान निश्चित हुआ, उसे स्थिर अथवा निरयण-

गणना का नाम दिया गया। उपर्युक्त सम्पातविन्दु से जो गणना चली, वह सायन अथवा चलगणना कहलायी। इस प्रकार इसके पीछे खिसकने को अयनगति कहा जाता है। पहले इसकी गति एक कला के लगभग मानी जाती थी, परन्तु आजकल वेध-द्वारा सिद्ध इसकी गति ५० विकला २ प्रतिविकला है। इसी प्रकार पहले सूर्यसिद्धान्त के अनुसार ३६५ दिन १५ घटी ३१ पल ३० विपल का वर्षमान माना जाता था, परन्तु आजकल ३६५ दिन १५ घटी २२·६ पल वर्षमान माना जाता है। अर्थात् सूर्यसिद्धान्त के मान से साढ़े-आठ पल छोटा आधुनिकमान है। लाकियर के मत से सायनवर्षमान ३६५ दिन १४ घटी ३१ पल और ५६ विपल माना जाता है।

भारत के लगभग सभी प्रान्तों में व्यवहार और धर्मकार्यों में निरयण-वर्षमान ही माना जाता है। उनमें भी सूर्यसिद्धान्त का वर्षमान मानने वाले अधिक हैं। यह वर्षमान ऋतुचक्र से धीरे-धीरे पीछे हटता जा रहा है। वर्तमान में १ मई सन् १९८३ को अयनांश २३ अंश ३७ कला और ८ विकला है। अतः निरयणवर्षमान लगभग साढ़े तेइस दिन पीछे पड़ गया है। आगे यह अन्तर और भी बढ़ रहा है। अतः वर्षमान को ऋतुचक्र के साथ रखने के लिए भारत सरकार के पंचांग में सायन-वर्षमान को ही स्वीकृत किया गया है। भारत के अतिरिक्त अन्य सभी देशों में सायन-वर्षमान ही माना जाता है। भारत में कई आचार्यों ने सायनसंक्रान्ति में भी दान-जप आदि धर्मकार्य करने को अधिक पुण्यप्रद बताया है। व्यावहारिक-दृष्टि से सायन-वर्षमान अधिक सुविधाजनक है। अतः इसे स्वीकार कर लेना ही वैज्ञानिक होगा।

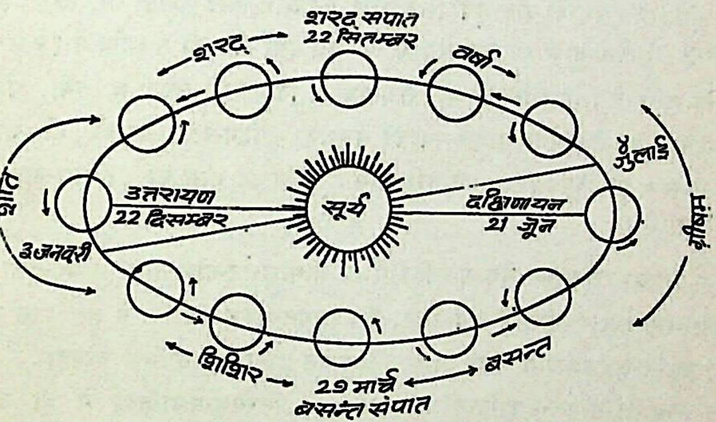
ऋतुचक्र

ऋतुओं का सम्बन्ध सौरमान से है। सौरमान भी सायनरूप में ऋतुओं को व्यक्त करता है। इसीलिए यद्यपि पहले मेष-वृष को वसन्त, मिथुन-कर्क को ग्रीष्म, सिंह-कन्या को वर्षा, तुला-वृश्चिक को शरद्, धनु-मकर को हेमन्त और कुम्भ-मीन को शिशिर मानते थे। परन्तु अब अयनगति के कारण मीन-मेष के सूर्य को वसन्त, वृष-मिथुन को ग्रीष्म, कर्क-सिंह को वर्षा, कन्या-तुला को शरद्, वृश्चिक-धनु को हेमन्त, और मकर-कुम्भ को शिशिर मानते हैं।

पीछे मासों के मधु, माधव आदि वैदिक नाम बतलाये गये हैं। उनमें मधु और माधव को वसन्त, शुक्र और शुचि को ग्रीष्म, नभ और नभस्य को वर्षा, इष और ऊर्ज को शरत्, सह और सहस्य को हेमन्त और तप तथा तपस्य को शिशिर ऋतु कहा जाता था।

उत्तरायण-दक्षिणायन तथा उत्तर-दक्षिण गोल

पृथ्वी की कक्षा विषुवन्मण्डल के ऊपर लगभग साढ़े तेइस अंश उत्तर-दक्षिण में झुकी हुई है। इसे क्रान्ति कहते हैं। पृथ्वी जब अपनी कक्षा पर उत्तर की ओर खिसकने लगती है, तो सूर्य दक्षिण की तरफ खिसकता नजर आता है। इसके विपरीत पृथ्वी जब दक्षिण की ओर खिसकती है, तो सूर्य उत्तर की ओर खिसकता दिखाई देता है। यह सूर्य की उत्तरायण और दक्षिणायन स्थिति के अनुसार माना जाता है।



उत्तरी गोलार्द्ध की ऋतुएँ

अर्थात् सूर्य जब उत्तर की ओर चलता है तो उत्तरायण, तथा दक्षिण की ओर चलता है तो दक्षिणायन माना जाता है। सायनमेष-संक्रान्ति अर्थात् २१ मार्च को सूर्य विषुवत् रेखा के ऊपर रहता है और इस तिथि को दिन-रात बराबर होती है। इसके बाद सूर्य उत्तर की ओर खिसकने लगता है, तथा विषुवत् रेखा से उत्तर में दिन बढ़ने लगता है, और दक्षिण में घटने लगता है। सूर्य विषुवत्-रेखा से जितना अंश हटता जाता है, उसे क्रान्ति कहते हैं। सायन मेष के अन्त में १२ अंश, सायन वृष के अन्त में २० अंश और सायन मिथुन के अन्त में साढ़े-तेइस अंश क्रान्ति होती है। २१ जून को सायन कर्क की संक्रान्ति में सूर्य परम उत्तर में चला जाता है। फिर सूर्य दक्षिण की ओर खिसकने लगता है; और विषुवत् रेखा से उत्तर में दिन घटने लगता है; तथा दक्षिण में बढ़ने लगता है। इसे ही दक्षिणायन कहते हैं। फिर सायन-सिंह की संक्रान्ति में २० अंश, सायन-कन्या की संक्रान्ति में १२ अंश और सायन-तुला की संक्रान्ति में शून्य अंश सूर्य

की क्रान्ति होती है। अर्थात् २३ सितम्बर को सूर्य विषुवत्-रेखा पर आ जाता है, और पुनः इस तिथि को दिनरात फिर बराबर हो जाती है। इसके साथ विषुवत् रेखा से उत्तर में सूर्य का छः मास का उत्तर गोल समाप्त हो जाता है, और दक्षिण-गोल का आरम्भ हो जाता है। ऐसी स्थिति में सूर्य की दक्षिण-क्रान्ति बढ़ने लगती है। सायन-वृश्चिक की संक्रान्ति में १२ अंश, धनु की संक्रान्ति में २० अंश और मकर की संक्रान्ति में साढ़े-तेइस अंश दक्षिण-क्रान्ति होती हैं। इस समय सूर्य परम-दक्षिण में चला जाता है, और उत्तर-गोल में रात की तथा दक्षिण-गोल में दिन की परम-लम्बाई होती है। यह २२ दिसम्बर का दिन होता है। इस के बाद सूर्य फिर उत्तर की ओर लौट जाता है, जिसे उत्तरायण कहते हैं। सायन-कुम्भ की संक्रान्ति में २० अंश तथा मीन की संक्रान्ति में १२ अंश दक्षिण क्रान्ति होती है। ऐसी स्थिति में उत्तर-गोल में दिन बढ़ने लगता है, तथा दक्षिण-गोल में घटने लगता है। पुनः सायन-मेष की संक्रान्ति में दिन-रात बराबर हो जाती हैं। इस के साथ ही विषुवत्‌रेखा से दक्षिण में सूर्य का छः मास का दक्षिण-गोल समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार सायन-मेष संक्रान्ति से छः मास उत्तर-गोल तथा सायन-तुला संक्रान्ति से छः मास दक्षिण-गोल में सूर्य रहता है। सायन-मकर संक्रान्ति से छः मास उत्तरायण तथा सायन-कर्कसंक्रान्ति से छः मास दक्षिणायन होता है। धार्मिक व्यवहार में अब भी लोग उपर्युक्त सायन-संक्रान्तियों के स्थान में निरयण-संक्रातियों में ही उत्तरायण-दक्षिणायन तथा अन्य संक्रान्तिपर्व मनाते हैं, परन्तु यह विज्ञान-संमत नहीं है। हिन्दू-धर्म में प्रत्येक पर्व का उसकी वैज्ञानिकता के आधार पर ही प्रचलन हुआ था, परन्तु बाद में कालक्रम के परिवर्त्तन हो जाने पर भी लोग वही मानते चले आ रहे हैं। यह हिन्दु धर्म के स्वभाव के विरुद्ध जड़ता का लक्षण है। यद्यपि कई आचार्यों ने इसका अनुभव करते हुए परिवर्तित परिस्थिति के अनुसार पर्व मनाने का आदेश दिया है, फिर भी वह प्रचलित नहीं हो रहा है।

वार्हस्पत्यमान

पूर्वोक्त नाक्षत्र, चान्द्र, सावन और सौर इन चारों मानों के अतिरिक्त वृहस्पति की मध्यमगति से सम्बन्धित वार्हस्पत्यमान भी व्यवहार में प्रचलित है। इसका प्रयोग केवल वर्षगणना में किया जाता है। मध्यममान से वृहस्पति के एक राशि-भोगकाल को एक वार्हस्पत्यवर्ष माना जाता है। इसका मध्यममान ३६१ दिन २ घटी ५५ पल तथा २५ विपल है। यही वार्हस्पत्य-संवत्सर कहा जाता है।

उत्तर और दक्षिण-भारत में वार्हस्पत्य संवत्सर की गणना की परिपाटी भिन्न-भिन्न है।

उत्तर-भारत में वृहस्पति की मध्यम-गति से एक राशि-भोगकाल को संवत्सर माना जाता है। यह काल सौरवर्ष से लगभग ४ दिन, १३ घटी कम होता है। अतः यह अन्तर बढ़ते-बढ़ते ८५ वें वर्ष में लगभग एक संवत्सर के तुल्य हो जाता है। अतः सौरवर्ष की तुलना में एक संवत्सर का लोप कर दिया जाताहै।

प्रतिवर्ष मेष-संक्रान्ति के समय वर्तमान संवत्सर के भुक्त और भोग्य काल का ज्ञान कर पंचांग में उसका उल्लेख कर दिया जाता है। धार्मिककृत्यों के संकल्प में संवत्सर का उल्लेख करना आवश्यक होता है। भोग्यकाल समाप्त हो जाने पर संवत्सर का परिवर्तन हो जाने पर भी; परम्परागत व्यवहारानुसार धार्मिककृत्यों के संकल्पों में अगली मेष-संक्रान्ति तक पिछले संवत्सर का ही उल्लेख किया जाता है। इस तरह यह परिपाटी थोड़ी जटिल है।

दक्षिण-भारत की परिपाटी वड़ी सरल है। वहां सौरवर्ष के वरावर ही संवत्सर का कालमान माना जाता है। अतः संक्रान्ति के साथ सौरवर्ष तथा संवत्सर दोनों ही वदल जाते हैं। अतः इस मत में संवत्सर का लोप करने की परिपाटी नहीं है।

इस भिन्नता के कारण संवत्सरगणना की सम्पूर्ण प्रक्रिया उत्तर और दक्षिण भारत में भिन्न-भिन्न हो गयी है। संवत्सर के नाम के अनुसार राष्ट्र के लिए उसका शुभाशुभफल शास्त्रों में निर्दिष्ट है। यही इसका उपयोग है।

इसके वर्षों को मिला कर वार्हस्पत्ययुग माना जाता हैं। इसके युगों के तीन भेद हैं — ५ वर्षीय, १२ वर्षीय तथा ६० वर्षीय। इन्हें हम एक-एक करके समझेंगे।

पंचवर्षीययुग

वैदिक-काल में चान्द्र और सौर मानों के समन्वय से ५ वर्षों का युग माना जाता था। क्योंकि पांच वर्षों के बाद पुनः उसी तिथि-नक्षत्र में सूर्य-चन्द्र की युति होती थी। इस सम्बन्ध में वेदाङ्गज्योतिष में कहा है—

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदाऽऽदियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनं ह्युदक्॥
(या. ज्यो.— ६)

अर्थात्—जब सूर्य-चन्द्र माघ-शुक्ल प्रतिपदा को धनिष्ठानक्षत्र में आते थे, तो उत्तरायण के साथ ही-इस पंचवर्षीय युग का आरम्भ होता था। इसके पांचों वर्षों के नाम और उनको देवता इस प्रकार माने जाते थे :—

कोष्ठक संख्या—ग्यारह

संवत्सर संख्या	१	२	३	४	५
नाम	संवत्सर	परिवत्सर	इडावत्सर	अनुवत्सर	उद्वत्सर
देवता	अग्नि	सूर्य	चन्द्र	ब्रह्मा	शिव

बाद में इसी के अनुकरण पर वृहस्पति का पंचवर्षीययुग भी बना लिया गया। इसका वर्णन हम साठ वर्षीय युग के सन्दर्भ में करेंगे।

द्वादशवर्षीययुग

वृहस्पति के १२ वर्षीय युग में १२ चान्द्र मासों के नामों के अनुकरण पर वर्षों के नाम रखे गये हैं। वृहस्पति प्रत्येक राशि में मध्यममान से एक वर्ष से ४ दिन १३ घटी कम समय तक रहता है। इसलिए स्वल्पान्तर से १२ राशियों के भगणकाल को इसका युग मानना उचित ही है। जैसे अश्विनी-नक्षत्र वाली पूर्णिमा वाले चान्द्रमास को आश्विन, कृत्तिकायुक्त पूर्णिमा वाले मास को कार्तिक आदि नाम दिये गये है। उसी प्रकार इन नक्षत्रों का मेष आदि राशियों से सम्बन्ध होने के कारण, मेष के वृहस्पति वाले वर्ष को आश्विन, वृष वाले वर्ष को कार्तिक आदि कहा जाता है।

साठ-वर्षीययुग

कालक्रम से उपर्युक्त ५ वर्षीय तथा १२ वर्षीय, दोनों युगों को मिलाकर वृहस्पति के ५ चक्र अर्थात् भगणकाल पूर्ण होने पर, एक ६० अर्षीय युग का विकास किया गया। इसमें पूर्वोक्त संवत्सर, परिवत्सर आदि पाँचों संवत्सरों की क्रम से १२ आवृत्ति हो जाती थी। इस क्रम में ६० वर्षों के प्रभवादि ६० नाम अलग से विकसित किये गये, क्योंकि उन वर्षों में राष्ट्र में दुर्भिक्ष, सुभिक्ष, युद्ध आदि परिणामों की इसी क्रम में आवृत्ति बार-बार होती देखी गयी। उन ६० संवत्सरों के नाम इस चक्र से स्पष्ट हो जायेंगे।

संवत्सरनाम तथा स्वामी

कोष्ठक संख्या—बारह

युगसंख्या

युग	फल	१	२	३	४	५	६
स्वामी		विष्णु	जीव	इन्द्र	अग्नि	त्वष्टा	अहिर्बुध्न्य
उत्तम, मध्यम अधम		उत्तम	उत्तम	उत्तम	उत्तम	मध्यम	मध्यम
संवत्सर अग्नि	वर्षा सस्ती	प्रभव १	अंगिरा ६	ईश्वर ११	चित्रभानु १६	सर्वजित् २१	नन्दन २६
परिवत्सर सूर्य	वर्षा	विभव २	श्रीमुख ७	बहुधान्य १२	सुभानु १७	सर्वधारी २२	विजय २७
इडावत्सर चन्द्र	बहुत जल	शुक्ल ३	भाव ८	प्रमाथी १३	तारण १८	विरोधी २३	जय २८
अनुवत्सर ब्रह्मा	देरी से वर्षा	प्रमोद ४	युवा ९	विक्रम १४	पार्थिव १९	विकृति २४	मन्मथ २९
उद्वत्सर शिव	अल्प जल	प्रजापति ५	धाता १०	वृष १५	अव्यय २०	खर २५	दुर्मुख ३०

कोष्ठक संख्या—बारह युगसंख्या

युग	फल	७	८	९	१०	११	१२
स्वामी		पितर	विश्वदेव	सोम	अग्नि	नासत्य	भग
उत्तम, मध्यम अधम		मध्यम	मध्यम	अधम	अधम	अधम	अधम
संवत्सर अग्नि	वर्षा सस्ती	हेमलम्बी ३१	शुभकृत् ३६	प्लवङ्ग ४१	परिधावी ४६	पिंगल ५१	दुन्दुभि ५६
परिवत्सर सूर्य	वर्षा	विलम्बी ३२	शोभन ३७	कीलक ४२	प्रमादी ४७	कालयुक्त ५२	रुधिरोद्गारी ५७
इडावत्सर चन्द्र	बहुत जल	विकारी ३३	क्रोधी ३८	सौम्य ४३	आनन्द ४८	सिद्धार्थी ५३	रक्ताक्ष ५८
अनुवत्सर ब्रह्मा	देरी से वर्षा	शार्वरी ३४	विश्वावसु ३९	साधारण ४४	राक्षस ४९	रौद्र ५४	क्रोधन् ५९
उद्वत्सर शिव	अल्प जल	प्लव ३५	पराभव ४०	विरोधकृत् ४५	अनल ५०	दुर्मति ५५	क्षय ६०

बृहत्संहिता में ३६वें संवत्सर का नाम 'शोककृत्', ३७वें का 'शुभकृत्', ४८वें का 'विक्रम' और ५७वें का 'अङ्गार' नाम हैं।

उपर्युक्त ६० संवत्सरों की तालिका में १ से २० तक ब्रह्मविंशति, २१ से ४० तक विष्णुविंशति और ४१ से ६० तक रुद्रविंशति कही जाती है।

साठ-वर्षीय संवत्सर-चक्र का आरम्भ

सूर्यसिद्धान्त के अनुसार कलियुगादि में 'विजय' नामक संवत्सर था। यह निश्चित ही उत्तर-भारतीय गणना के अनुसार कहा गया है। पितामहसिद्धान्त के अनुसार कलियुगादि में 'प्रमाथी' नामक संवत्सर था। यह दक्षिण-भारतीय गणना के अनुसार कहा गया है।

विष्णु के प्रथम अवतार भगवान् मत्स्य का आविर्भाव 'प्रभव' नामक संवत्सर में हुआ था। सम्भवत: इसीलिए ग्रन्थों में संवत्सरों की सूची का आरम्भ 'प्रभव' से किया गया है। अन्यथा अन्य कोई कारण इसमें नहीं दिखता।

६० संवत्सरों की गणना में उत्तर-भारतीय पद्धति शुद्ध मध्यमराशि-भोगकाल पर आधारित होने से शुद्ध है। परन्तु इस पद्धति में ८५ वर्षों के बाद एक संवत्सर के लोप करने का झंझट है। दक्षिण-भारतीय पद्धति गणनानुसार अशुद्ध होने पर भी व्यावहारिक रूप में अधिक सुकर है।

वल्लालसेनकृत अद्‌भुतसागर नामक ग्रन्थ (पृष्ठ १२५) में विष्णुधर्मोत्तरपुराण का सन्दर्भ देते हुए, ६० वर्षीय युग का आरम्भ विशेष ज्योतिषीय घटना पर आधारित बताया गया है। उसके अनुसार पूर्व में जो माघशुक्ल प्रतिपदा को धनिष्ठानक्षत्र में सूर्यचन्द्र की युति होने पर पंचवर्षीय युग का आरम्भ माना गया है, उसमें बृहस्पति को भी संयुक्त कर इसे बहुत दीर्घ काल तक व्यापक बना दिया गया है। आधार श्लोक इस प्रकार है :—

माघशुक्लसमारम्भे चन्द्रार्कौ वासवर्क्षगौ।
जीवयुक्तौ यदा स्यातां षष्ट्यब्दादिस्तदा भवेत्॥

अर्थात्—माघशुक्ल प्रतिपदा को धनिष्ठानक्षत्र में जब सूर्य-चन्द्र और बृहस्पति की युति होती है, तब ६० वर्षीय युग का आरम्भ होता है। इसके अनुसार षष्टिवर्षीय-युग का आरम्भ कल्पादि में नहीं हुआ, अपितु कल्पादि से सत्तर करोड़ चालीस लाख वर्ष बाद में हुआ। ऐसी घटना प्रति छियासी करोड़ चालीस लाख वर्ष बाद होती है।

ऐसा अवसर सम्पूर्ण कल्प में केवल पांच वार आता है। इस प्रकार वार्हस्पत्य-संवत्सर की गणना को विज्ञान-सम्मत आधार देकर; इसे महान् कालगणना का साधन बना दिया गया है। इसे देखते हुए आश्चर्य होता है कि भारत के ऋषि-महर्षि किसी सिद्धान्त को स्थिर करते समय कितनी सूक्ष्मता और गम्भीरता के साथ दूर तक छानबीन करते थे।

उत्तर-भारत में संवत्सर जानने की विधि

पहले यह बतलाया गया है कि बृहस्पति का संवत्सर सौरवर्ष से ४ दिन से कुछ अधिक ही छोटा होता है। अतः वार्हस्पत्य-संवत्सर सौरवर्ष से पिछड़ता जाता है। अतः ८५ वर्षों के बाद एक संवत्सर का सौर-वर्ष की तुलना में क्षय हो जाता है। अतः वर्तमान संवत्सर जानने के लिए गत कलिसंवत् में ८५ से भाग देकर, लब्धि को फिर गतकलि में जोड़ कर ६० का भाग दें। जो शेष हो, वह विजयादि गत संवत्सर होता है। एक आगे करने से वर्तमान संवत्सर का ज्ञान होता है। यह सबसे सुगम विधि है। वर्षारम्भ में जो संवत्सर होता है, उसी का प्रयोग सारे साल संकल्पादि में किया जाता है। इसलिए वर्तमान संवत्सर के गत मासादि जानने के लिए अधिक गणित करने की कोई आवश्यकता नहीं। इसे यदि जानना ही चाहें तो उसके लिए यह श्लोक है :—

पृथक्छको जातिहतोऽब्जगोऽक्षिवेदैर्युतोऽक्षाद्रिपुराणभक्तः।
लब्धेन युक्तः खरसाप्तशेषे संवत्सराः स्युः प्रभवात् क्रमेण।

अर्थात्—अभीष्ट शकसंवत् को दो स्थानों में लिखें। एक स्थान में २२ से गुणा कर उसमें ४२९१ जोड़ें। इसमें १८७५ से भाग देकर जो लब्धि हो, उसे दूसरे स्थान में स्थित शकसंवत् में जोड़ दें। फिर उसमें ६० का भाग देने से जो शेष हो, वह प्रभवादि-गत संवत्सर होता है। उपर्युक्त १८७५ से भाग देने से जो शेष हो, उसको १२ से गुणा कर, १८७५ से भाग दे तो लब्धि गत मास होंगे। पुनः शेष को ३० से गुणा कर, १८७५ से भाग देने से लब्धि गत दिन होते हैं। पुनः शेष को ६० से गुणा कर, १८७५ से भाग देने से लब्धि गत घटी होती है। पुनः शेष को ६० से गुणा कर, १८७५ से भाग देने से लब्धि गत पल होते हैं। वर्तमान संवत्सर के इस गत मासादि को वार्हस्पत्यमान में घटाने से भोग्य मासादि प्राप्त होते हैं। यह विधि उत्तर-भारत के लिए है।

दक्षिण-भारत में संवत्सर जानने की विधि

दक्षिण भारत में ८५ वर्षों के बाद संवत्सर का लोप नहीं माना जाता है। इसलिए वहां सौरवर्ष के बराबर ही संवत्सर माना गया है। इस कारण वर्तमान संवत्सर

जानने के लिए वहां उपर्युक्त विधि की आवश्यकता ही नहीं होती। इसके लिए गत-कलि में ६० का भाग देने से शेष प्रमाथी आदि गत संवत्सर होता है। एक आगे करने से वर्तमान संवत्सर आ जाता है।

कालमानों का-समन्वय

पूर्व में वर्णित नाक्षत्र, चान्द्र, सावन और बार्हस्पत्य, इन चारों कालमानों का सौरमान में अन्तर्भाव कर दिया जाता है। इस प्रकार व्यवहार में आने वाले सभी कालमान सौरमान से नियन्त्रित हैं। इस प्रकार मानव-व्यवहार का सर्व-प्रमुख साधक सौरमान है। अब हम देखेंगे कि किस प्रकार उपर्युक्त सभी कालमान सौरमान में अन्तर्भूत हो जाते हैं।

सर्वप्रथम नाक्षत्र मान का अन्तर्भाव प्रतिदिन सावन-मान में कर दिया जाता है। इसके बाद चान्द्रमान का अन्तर्भाव सावन और सौर दोनों के साथ किया जाता है।

चान्द्र और सावन कालमानों का समन्वय—क्षयतिथि

चान्द्रतिथि का अन्तर्भाव सावन दिन के साथ होता है। यह बताया गया है कि एक चान्द्रदिन अथवा तिथि मध्यममान से २१३२० असु का होता है। एक सावनदिन मध्यम मान से २१६५९ असु का होता है। इसलिए प्रत्येक सावनदिन में एक तिथि से ३३९ असु अधिक बीत जाते हैं। ३३९ सावनमान २१६५९ असु में भाग देने से लब्धि लगभग ६३ आती है। इससे यह सिद्ध होता है कि ६३ तिथि के बाद सावनदिन संख्या से चान्द्रदिन संख्या एक अधिक हो जाती है। इस लिए चान्द्रदिन को सावन के साथ रखने के लिए ६३ तिथि के बाद सावनदिन-संख्या की तुलना में एक तिथि की संख्या का क्षय अथवा लोप कर दिया जाता है। अर्थात् तिथि की एक अगली संख्या गिन लेते हैं। इसमें तिथि का लोप नहीं होता केवल तिथि की संख्या का लोप होता है। अर्थात् क्षयतिथि का सूर्योदय से सम्बन्ध नहीं होता है। इस प्रकार तिथि सावनदिन के साथ-साथ चलता रहता है।

चान्द्र और सौर मानों का समन्वय—अधिकमास

चान्द्रमान का दूसरा अन्तर्भाव सौरमान के साथ होता है। इसमें चान्द्र-मास का अन्तर्भाव सौरमास में किया जाता है। यह बताया जा चुका है कि चान्द्रमास

का मान २९ दिन ३१ घटी ५० पल ७ विपल तथा ३० प्रतिविपल है। सौरमास का मान ३० दिन २६ घटी १७ पल तथा ३७ विपल है। इन दोनों का अन्तर ५४ घटी २७ पल और ३० विपल है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक सौरमास के साथ एक चान्द्रमास से ५४ घटी २७ पल और ३० विपल अधिक बीत जाता है। यह अन्तर बढ़ते-बढ़ते साढे बत्तीस मास के बाद एक चान्द्रमास से अधिक हो जाता है। अर्थात् सौर-मास की संख्या से चान्द्रमास की संख्या एक अधिक हो जाती है। अतः चान्द्रमास को सौरमास के साथ रखने के लिए चान्द्रमास की एक संख्या का लोप करके, उसे पिछले सौरमास के साथ ही गिन लेते हैं। इसे ही बढ़ा हुआ भाग होने के कारण अधिकमास तथा मलरूप थोड़े-थोड़े भागों में एकत्र होने के कारण मलमास कहा जाता है। अधिकमास सदा शुक्लादि मासगणना से होता है। अमावस्या से अमावस्या तक चान्द्रमास में यदि सूर्य की संक्रान्ति हो जाये तो, उसे शुद्धमास माना जाता है। परन्तु जब उपर्युक्त मलभाग एक चान्द्रमास के बराबर हो जाता है, तब सूर्य की संक्रान्ति के थोड़ी देर बाद अमावस्या के अन्त के साथ एक चान्द्रमास समाप्त होता है। उसके बाद दूसरा चान्द्रमास प्रारम्भ होकर सूर्य की अग्रिम संक्रान्ति से थोड़ी देर पूर्व ही समाप्त हो जाता है। इस प्रकार समाप्त हुआ यह दूसरा चान्द्रमास साधारण गिनती से अधिक होता है। इसलिए इसे अधिकमास कह कर उसी सौरमास के साथ गिन लेते हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि स्पष्टमान से सौरमास जब बड़ा होगा, तभी अधिमास हो सकता है। सौरमासों के कालमान की तालिका में आप देख चुके हैं कि तुला से कुम्भ तक सौरमास छोटे होते हैं। अतः इन पांच मासों में अधिकमास नहीं होता। कुछ शताब्दियों तक ऐसा ही चलेगा।

क्षयमास

उपर्युक्त बातों से ही यह भी अनुमान होता है कि स्पष्टमान से तुला से कुम्भ तक के सौरमासों में यदि कोई एक अधिक छोटा होकर, चान्द्रमास से भी छोटा हो जाये तो इसका अर्थ होगा कि अमावस्या से अमावस्या तक एक चान्द्रमास में ही दो संक्रान्तियां हो जायेंगी। अर्थात् प्रथम अमावस्या के थोड़ी देर बाद प्रथम-संक्रान्ति तथा द्वितीय अमावस्या से थोड़ी देर पूर्व द्वितीय-संक्रान्ति हो जायेगी। चान्द्रमास की गणना सौरमास के अधीन होने से एक ही चान्द्रमास को दोनों सौ!रमासों के साथ गिनना पड़ेगा। इस प्रकार एक को ही दो बार गिनने से एक मास का क्षय अथवा लोप हो

जाएगा और एक ही मास को आधा-आधा करके ६० तिथियां माननी पड़ेंगी। इसी स्थिति को क्षयमास कहा जाता है।

स्पष्टगणना से क्षयमास १९ वर्ष तथा १४१ वर्ष के बाद आता है। पिछले वर्ष संवत् २०३९ का क्षय मास १९ वर्ष के बाद आया था। अब फिर १४१ वर्ष के बाद आयेगा। जब भी क्षयमास होता है, तो उससे पहले और बाद में एक ही वर्ष में दो अधिमास होते हैं। इनमें से बाद वाला अधिकमास स्वाभाविक गणना से तथा पूर्ववाला अधिमास क्षयमास के कारण अस्वाभाविक रूप में सूक्ष्मगणना के आधार पर होता है।

इसी प्रकार सावनमान भी सौरमान में स्वाभाविकरूप में अन्तर्भूत हो जाता है। बार्हस्पत्य-संवत्सर का ८५ संवत्सरों के बाद सौरसंवत्सर में अन्तर्भाव तो पहले ही बताया जा चुका है। इस प्रकार नाक्षत्र, चान्द्र, सावन और बार्हस्पत्य, ये चारों कालमान सौरमान में अन्तर्भूत हो जाते हैं। अतः सौरवर्षमान ही स्थिर है; जो युगादि लम्बी कालगणना के लिए उपयोगी होता है।

पंचांग-परिचय

भारतीयतिथि-पत्रों को पंचांग कहा जाता है। इसमें वार, तिथि, नक्षत्र, योग और करण, इन पांच कालांगों का प्रतिदिन का विवरण रहता है। यह प्रतिवर्ष बनता है। कुछ लोग दस अथवा सौ वर्षों का पंचांग एकत्र ही बनाते हैं। वैसे पंचांगों में उपर्युक्त नाक्षत्र, चान्द्र, सावन, बार्हस्पत्य और सौर, इन पांचों का भी विवरण रहता है। इसलिए भी इसे पंचांग कहा जा सकता है; परन्तु परम्परा से लोग प्रथम व्याख्या ही मानते हैं।

पांच अंगों में से वार, तिथि और नक्षत्र का वर्णन तो हो ही चुका है, केवल योग और करण शेष रहते है।

योग

तिथि के वर्णन में बताया गया था कि चन्द्र और सूर्य की गति के अन्तर से तिथि का निर्धारण होता है। इसके विपरीत योग-निर्धारण के लिए सूर्य और चन्द्र की गति का योग किया जाता है। इसीलिए इसका नाम योग है। सूर्य और चन्द्र की गति का योग जब ८०० कला होता है, तो एक योग होता है। अर्थात् दोनों

का गतियोग जब एक भगण अर्थात् २१६०० कला हो जाता है, तो योग का एक चक्र पूरा होता है। अतः ८०० × २७ = २१६०० होने से २७ योग होते हैं। उनके नाम ये हैं—(१) विष्कम्भ (२) प्रीति (३) आयुष्मान् (४) सौभाग्य (५) शोभन (६) अतिगण्ड (७) सुकर्मा (८) धृति (९) शूल (१०) गण्ड (११) वृद्धि (१२) ध्रुव (१३) व्याघात (१४) हर्षण (१५) वज्र (१६) सिद्धि (१७) व्यतीपात (१८) वरीयान् (१९) परिघ (२०) शिव (२१) सिद्धि (२२) साध्य (२३) शुभ (२४) शुक्ल (२५) ब्रह्म (२६) ऐन्द्र और (२७) वैधृति। इन योगों में इनके नाम के अनुसार ही फल होते हैं।

करण

तिथि के अर्धभाग को करण कहा जाता है, अर्थात् चन्द्र एवं सूर्य की गति का अन्तर ६ अंश होने पर एक करण होता है। एक चान्द्रमास में ६० करण होते हैं। इनमें चार करण स्थिर हैं। वाकी ५६ करण चल हैं। अतः पूरे मास में ७ चल-करणों की ८ आवृत्ति हो जाती है। स्थिर-करण इस प्रकार हैं— कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध में शकुनि, अमावस्या के पूर्वार्ध में चतुष्पद, उत्तरार्ध में नाग तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न-करण होता है। शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा के उत्तरार्ध से कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के पूर्वार्ध तक ५६ तिथ्यर्धों में क्रम से चल-करणों की आवृत्ति होती है। उन चल-करणों के नाम इस प्रकार हैं :—

(१) बव (२) बालव (३) कौलव (४) तैतिल (५) गर (६) वणिक् और (७) विष्टि। विष्टि को ही भद्रा कहा जाता है। भद्रा शुभकार्यों में अशुभ मानी जाती है।

पितृमान

वैदिककाल में वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुओं को देवदिन तथा शरद, हेमन्त और शिशिर ऋतुओं को पितृदिन माना जाता था। इसके विपरीत उनकी रात्रि मानी जाती थी। परिमाण में देव और पितृ दोनों का अहोरात्र समान होता था। परन्तु बाद में यह मान्यता बनी कि पितर चन्द्र के पृष्ठ पर पृथ्वी से दूसरी तरफ निवास करते हैं। ऐसी स्थिति में कृष्णपक्ष के उत्तरार्ध से शुक्लपक्ष के पूर्वार्ध तक पितरों का दिन तथा इसके विपरीत रात्रि सिद्ध होती है। परन्तु अर्धरात्रि से दिन का आरम्भ मानने से

कृष्णपक्ष को दिन तथा शुक्लपक्ष को रात्रि मान लिया गया। दोनों प्रकार से चान्द्रमास के बराबर पितरों का अहोरात्र सिद्ध हुआ। इसी से आगे मास और वर्ष की कल्पना की गयी। कृष्णपक्ष में पितरों का दिन होने से ही इस पक्ष में उनका श्राद्ध करने का विशेषफल धर्मशास्त्र में बताया गया है।

दिव्यमान

ऊपर बताया गया है कि वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुएं देवताओं का दिन मानी जाती हैं। इसके विपरीत शरद्, हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में उनकी रात्रि होती है। इसके विपरीत राक्षसों की दिन-रात मानी जाती है। ऐसा इसलिए माना जाता है, क्योंकि देव उत्तरी-ध्रुव के पास तथा राक्षस दक्षिणी-ध्रुव के पास रहते हैं; ऐसा वेदपुराणों में कहा गया है। यहां भी अर्धरात्रि से वार का आरम्भ मानने से उत्तरायण में देवदिन तथा दक्षिणायन में देवरात्रि मानी जाती है। इसके विपरीत राक्षसों की दिनरात्रिव्यवस्था होती है। इसी के अनुसार उनके ३० दिन का मास तथा १२ मास अथवा ३६० दिन का दिव्यवर्ष माना जाता है। अर्थात् ३० मानववर्ष का दिव्यमास तथा ३६० मानववर्ष का दिव्यवर्ष माना जाता है। शास्त्रों में युगमान की गणना दिव्यवर्षों में ही बतायी गयी है।

युगमान

पीछे युगमान की सिद्ध-परिभाषायें बतलायी गयी हैं। यहां उनके सम्बन्ध में कुछ विशेष चर्चा की जायेगी। वेदांगज्योतिष के अनुसार वैदिक-काल में ५ वर्षों का युग होता था। इसका वर्णन हम बार्हस्पत्यमान के वर्णन में कर आये हैं। ५ वर्ष और १२ वर्ष के युगों को मिलाकर ५ × १२ = ६० वर्षीय युग का विकास हुआ। यह भी हम देख चुके हैं। इसका और आगे विकास हुआ, जिससे दीर्घकाल का युगमान बना। परन्तु प्रत्येक स्थिति में इसका आधार ग्रहगति ही रही। अतः इसकी वैज्ञानिकता बनी रही। शाहजहाँ के दरबारी ज्योतिषी मुनीश्वर ने सिद्धान्तसार्वभौम

(मध्यमाधिकार श्लोक—१८) में बताया है कि ५ वर्षों का प्रथम लघुयुग होता है। १२ प्रथम लघुयुग का (५×१२=६०) द्वितीय-लघुयुग होता है। फिर १२ द्वितीय लघुयुग का (५×१२×१२=७२०) तृतीय-लघुयुग होता है। पुनः ६०० तृतीय लघुयुग का (५×१२×१२×६००=४,३२,०००) अर्थात् चार लाख बत्तीस हज़ार वर्षों का कलियुग होता है। सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि महायुग धर्म का स्वरूप है। धर्म के १० चरण माने जाते हैं। संभवतः यहाँ मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म के दश लक्षणों की ओर संकेत है। वे लक्षण ये हैं—

धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनुस्मृति ७, ७२)

धर्म के चरण कलियुग में एक, द्वापर में दो, त्रेता में तीन और सत्ययुग अथवा कृतयुग में चार होते हैं। तदनुसार कलियुग का द्विगुण द्वापर, त्रिगुण त्रेता तथा चतुर्गुण सत्ययुग माना गया है। अतः १०×कलिवर्ष=१०×४,३२,०००=४३,२०,००० वर्ष का महायुग होता है। १+२+३+४=१० ये दश कलियुग ही महायुगरूप धर्म के दश चरण हैं। सायण आदि विद्वानों ने इस युगमान का मूल अथर्ववेद (८·२·२१) के एक मन्त्र में देखा हैं। इसी को निरुक्त, मनुस्मृति, महाभारत तथा पुराणों ने स्वीकार किया है। यद्यपि अथर्ववेद में दिव्यवर्ष का उल्लेख नहीं है, फिर भी निरुक्त आदि सभी ग्रन्थ परम्परा से वहां दिव्यवर्ष की संख्या मानते हैं।

"इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।"

अर्थात्—इतिहास और पुराणों से वेदार्थ का विस्तार समझना चाहिए। इस परम्परा के अनुसार निरुक्त आदि ग्रन्थों की मान्यता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार युगमान दिव्यवर्षों में हैं। दिव्यवर्ष को ३६० से गुणा करने पर मानव वर्ष होता है। युगमान के साथ उनके आदि-अन्त में क्रमशः सन्धि और सन्ध्यांश काल भी बताये गए हैं।

कोष्ठक संख्या :—तेरह

युग	सन्धि	युगमान	सन्ध्यांश	कुल दिव्यवर्ष	कुल मानववर्ष
कलियुग	१००	१०००	१००	१२००	४,३२,०००
द्वापरयुग	२००	२०००	२००	२४००	८,६४,०००
त्रेतायुग	३००	३०००	३००	३६००	१२,९६,०००
सत्ययुग	४००	४०००	४००	४८००	१७,२८,०००
कुलयोग (महायुग)	१०००	१०,०००	१०००	१२,०००	४३,२०,०००

ये कालमान ग्रहों के भगणों के समगुणक (Factor) पर आधारित हैं। आर्यभट्ट-प्रथम महायुगमान तो वही मानते हैं, परन्तु कलियुग आदि चारों युगों को एकोत्तर-गुणित नहीं मानते हैं। उनके मत में महायुग के समान चारभाग कलि आदि युग होते हैं। अतः उनके मत में १०,८०,००० (दश लाख अस्सीहज़ार) वर्ष के पृथक्-पृथक् चारों युग होते हैं। आर्यभट्ट-प्रथम के मत में युगों में भी ग्रह-भगणों के समापवर्तक बनते हैं।

कुछ आधुनिक विद्वानों को उपर्युक्त युगपद्धति की विशाल संख्या देख कर आश्चर्य होता है और वे इस पर विश्वास नहीं करते। इसके लिए वे उपर्युक्त दिव्य-वर्ष को मानववर्ष ही मानते हैं। इसके आधार के लिए वे अथर्ववेद (८·२·२) के मन्त्र में दिव्य शब्द के अभाव का सहारा लेते हैं।

योगदा सत्संग आश्रम, रांची (विहार) के स्वामी श्री युक्तेश्वरगिरि जी ने अपनी The Holy Science नामक पुस्तक में संसार के ऐतिहासिक घटना-चक्रों के परि-

प्रेक्ष्य में ज्यौतिष के अयनगति-सिद्धान्त के आधार पर युगव्यवस्था की एक नयी परिभाषा स्थापित की है। इस परिभाषा के अनुसार कलि आदि युगों के मान दिव्यवर्षों में न होकर मानववर्षों में हैं। ये युगमान प्रथम चक्र में अवरोही क्रम में सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग के रूप में घटित होकर फिर दूसरे चक्र में आरोही क्रम में कलि, द्वापर, त्रेता और सत्ययुग के रूप में घटित होते हैं। कलि आदि युगों के मान अपने सन्धि-सन्ध्यांश काल के साथ क्रम से १२००, २४००, ३६०० और ४८०० वर्षों के होते हैं। अर्थात् पूरा महायुग १२,००० वर्षों का होता है। यह महायुग एक बार अवरोही क्रम में तथा दूसरी बार आरोही क्रम में होता है। इस तरह इनका चक्र २४,००० वर्षों में पूर्ण होता है। यह युगचक्र अवरोही और आरोही क्रम में २४,००० वर्षों में पूर्ण होने वाले अयनगति-चक्र पर पूर्णतः आधारित है। इस आधार का कारण यह है कि अयनगति की अवरोही और आरोही स्थिति के अनुसार ही जगत् में लोगों की नैतिक एवं वैज्ञानिक स्थिति का ह्रास एवं विकास देखा जाता है। अर्थात् ० से १८० अयनांश तक आरोही युग तथा उसके बाद ३६० अयनांश तक अवरोहीयुग होता है। इस प्रकार ५०० ई० के निकट शून्य अयनांश मानने पर ई० सन् ५०० से १७०० तक विश्व इतिहास का अनीतिपूर्ण काल आरोही कलियुग रहा। उसके बाद अभी ज्ञान-विज्ञान के विकास की ओर अग्रसर आरोही द्वापरयुग चल रहा है। इस प्रकार यह युगपद्धति वैज्ञानिक तथा युक्ति-युक्त प्रतीत होने पर भी परम्परागत रूप से सर्वमान्य नहीं है। परम्परागत रूप से सूर्य-सिद्धान्त की युगपद्धति ही सम्पूर्ण भारत में सर्वमान्य है।

युगादि-तिथियां

कौन-सा युग किस तिथि को प्रारम्भ हुआ, इसकी स्मृति अब भी शास्त्रों में सुरक्षित है :—

कार्तिकशुक्ला नवमी बुधवार प्रथम प्रहर श्रवण नक्षत्र वृद्धियोग में इस महायुग का विगत सत्ययुग प्रारम्भ हुआ था। वैशाखशुक्ला तृतीया सोमवार द्वितीय प्रहर रोहिणी नक्षत्र शोभनयोग में त्रेतायुग का प्रारम्भ हुआ था। माघकृष्ण अमावस्या शुक्रवार तृतीय प्रहर धनिष्ठा नक्षत्र वरीयान् योग में द्वापर युग का प्रारम्भ हुआ था। भाद्रकृष्णत्रयोदशी शुक्रवार की अर्धरात्रि में आश्लेषानक्षत्र व्यतिपातयोग में कलियुग का प्रारम्भ हुआ था।

मनुकाल

उपर्युक्त ७१ महायुगों का एक मनुकाल माना जाता है । १४ मनु होते हैं। प्रत्येक मनु के प्रारम्भ में तथा एक सब से अन्त में कुल १५ सत्ययुग के बरावर के सन्धिकाल होते हैं। आर्यभट्ट के मत में ७२ महायुग का मनु होता है। परन्तु सन्धिकाल नहीं होता। चौदह मनुओं के नाम ये हैं :— १. स्वायम्भुव, २. स्वारोचिष, ३. उत्तमज, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष, ७. वैवस्वत, ८. सार्वणि, ९. दक्षसार्वणि, १०. ब्रह्मसार्वणि, ११. धर्मसार्वणि, १२. रौद्र (रुद्रसार्वणि) १३. रौच्य (देवसार्वणि) और १४ भौत्यक (इन्द्रसार्वणि)। कौनसा मनु किस तिथि को आरम्भ हुआ था या होगा; इसका उल्लेख ग्रन्थों में इस प्रकार उपलब्ध होता है :--

मन्वादि-तिथियां

१. स्वायम्भुव—कार्तिक शुक्ला द्वादशी ।
२. स्वारोचिष—आश्विन शुक्ला नवमी ।
३. उत्तमज—चैत्र शुक्ला तृतीया ।
४. तामस—भाद्रपदशुक्ला तृतीया ।
५. रैवत--पौष शुक्ला एकादशी ।
६. चाक्षुष—आषाढ़ शुक्ला दशमी ।
७. वैवस्वत—माघशुक्ला सप्तमी ।
८. सार्वणि—भाद्रकृष्णाष्टमी (कृष्णादिमास)
९. दक्षसार्वणि—श्रावणी अमावस्या ।
१०. ब्रह्मसार्वणि—फाल्गुनी पूर्णिमा ।
११. धर्मसार्वणि—आषाढ़ी पूर्णिमा।
१२. रौद्र (रुद्रसार्वणि)—कार्त्तिकी पूर्णिमा ।
१३. रौच्य (देवसार्वणि)—चैत्री पूर्णिमा ।
१४. भौत्यक (इन्द्र सार्वणि)—ज्येष्ठ-पूर्णिमा ।

वर्तमान में सप्तम वैवस्वत मनु चल रहा है।

ब्राह्ममान

उपर्युक्त १४ मनुकाल का एक कल्पकाल होता है । इसे ही ब्रह्मा का दिन कहते हैं । ७१ महायुग का एक मनु होता है । अतः ७१ × १४ = ९९४ महायुग । उपर्युक्त १५ सन्धियां = १५ × सतयुग = १५ × १७,२८००० = २,५९,२०,००० वर्ष = ४३,२०,००० × ६ = ६ महायुग । अतः ९९४ महायुग + ६ महायुग = १००० महायुग = कल्पकाल । यह चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष के तुल्य है । इस प्रकार सू. सि. तथा ब्र. सि. के अनुसार एक हजार महायुग का ब्रह्मा का दिन होता है । आर्यभट्ट के मत में १४ × ७२ महायुग = १००८ महायुग = १४ मनु = कल्प । चूंकि इनके मत में मनुसन्धि नहीं होती, अतः १००८ महायुग का एक कल्प = एक ब्रह्मदिन होता है । इतनी ही ब्रह्मा की रात होती है । अतः दो कल्पों का उनका एक अहोरात्र होता है । इस अहोरात्र से ३० अहोरात्र का उनका मास होता है ।

कल्पों के नाम तथा उनकी आरम्भ तिथियां

ब्रह्मा की रात्रि में सृष्टि नहीं होती । अतः महाभारत में ब्रह्मा के मास के मात्र ३० दिनों के ही नाम उल्लिखित हैं । ब्रह्मा के उन ३० दिन-कल्पों के नाम इस क्रम से हैं ।—१. श्वेतवाराह, २. नीललोहित, ३. वामदेव, ४. गाथान्तर, ५. रौरव, ६. प्राण, ७. बृहत्कल्प, ८. कन्दर्प, ९. सत्य, १० ईशान, ११. ध्यान, १२. सारस्वत, १३. उदान, १४. गरुड, १५. कौर्म, १६. नारसिंह, १७. समाधि, १८. आग्नेय, १९. विष्णुज, २०. सौर, २१. सोमकल्प, २२. भावन, २३. सप्तमाली, २४. वैकुण्ठ, २५. आर्चिष, २६. वल्मीकल्प, २७. वैराज, २८. गौरीकल्प, २९. माहेश्वर, और ३० पितृकल्प । इनमें १५ वां कल्प ब्रह्मा की पूर्णिमा और ३०वां कल्प उनकी अमावस्या है ।

वराहपुराण में कहा गया है कि इन ३० कल्पों में निम्नलिखित केवल सात कल्पों के आरम्भ की तिथियां अनुस्मृति से ज्ञात है, जो इस प्रकार है :—१. माघशुक्ला तृतीया, २. फाल्गुन कृष्ण तृतीया, ३. चैत्रशुक्ला पंचमी, ४. चैत्र कृष्णा पंचमी, ५. माघ शुक्ला त्रयोदशी, ६. कार्तिक शुक्ला सप्तमी और ७. मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी

ब्रह्म-सिद्धान्त तथा ब्रह्म-पुराण में कल्पारम्भ सामान्य रूप से चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को माना गया है। (देखिए शब्दकल्पद्रुम पृ० ६४)।

इस प्रकार १२ मास अथवा ३६० अहोरात्रों का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है। इस वर्षमान से ब्रह्मा की आयु १०० वर्षों की होती है। इसे ही महाकल्प की संज्ञा दी जाती है। इसमें पचास-पचास वर्षों के प्रथम और द्वितीय परार्ध होते हैं।

ब्रह्मा की गतायु

सूर्यसिद्धान्त, विष्णुधर्मोत्तरपुराण के ब्रह्मसिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त तथा भास्कराचार्य के मत में ब्रह्मा की आयु के ५० वर्ष अर्थात् प्रथम-परार्ध बीत चुका है। वर्तमान में द्वितीय परार्ध का प्रथम दिन चल रहा है। अर्थात् श्वेतवाराहकल्प वर्तमान में है।

धार्मिक संकल्प में यही प्रचलित है। दूसरी तरफ स्कन्दपुराण के हाटकेश्वरमाहात्म्य (अध्या. २७३ श्लोक ८), आर्यभट्ट की परम्परा के वटेश्वरसिद्धान्त (मध्याधिकार १·१०) आदि ग्रन्थों में ब्रह्मा की गतायु साढे आठ वर्ष बतायी गयी है। यह मत धार्मिक संकल्प में प्रचलित नहीं है।

एक मत के अनुसार सृष्टि की सत्ता ब्रह्मा के दिन-कल्प तक ही रहती है। परन्तु दूसरे मत में सृष्टि की सत्ता महाकल्पान्त तक रहने वाली है। पूर्वमीमांसा के मत में जगत् नित्य है। इसका अर्थ है कि सृष्टि निरन्तर चलते रहने वाली है।

पुराणों में महाकल्प से भी बड़े-बड़े कालमानों की चर्चा है। मानवीय आयु सीमा को देखते हुए, यह कथन बुद्धि-विलास-मात्र है। वस्तुतः अनन्त काल में किसी को भी अपनी बुद्धि दौड़ाने की पूरी स्वतन्त्रता है। इसे कोई गलत कैसे कह सकता है?

कल्पगत-वर्ष

वर्तमान कल्प में ६ मनु बीत चुके हैं। सातवें मनु के २७ महायुग भी बीत चुके हैं। २८वें महायुग में सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापर युग भी बीत चुके हैं। शकसंवत् के प्रारम्भ में कलियुग के ३,१७९ वर्ष बीत चुके थे। अतः सब का जोड़ करने

से शकारम्भ में १,९७,२९,४७,१७९ वर्ष अर्थात् एक अरब सतानवे करोड़ उनतीस लाख सैंतालिस हजार एक सौ उनासी वर्ष वर्तमान कल्प के बीत चुके थे। इसमें शक जोड़ने से गत कल्प वर्ष हो जायेंगे । अभी शक १९०७ है । अतः वर्तमान कल्पगत एक अरब सतानवे करोड़ उनतीस लाख उनचास हजार छिआसी वर्ष सिद्ध होता है। यही कल्पगत संवत् कहा जाता है ।

सृष्टिगतवर्ष

विष्णुधर्मोत्तरपुराण, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य आदि विद्वानों के मत में कल्पादि और सृष्ट्यादि एक ही है। परन्तु सूर्यसिद्धान्त के मत से ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य, मनुष्य, पशुपक्षी आदि की सृष्टि करने में ब्रह्मा को एक करोड़ सत्तर लाख और चौसठ हजार वर्ष लगे। महासिद्धान्तकर्ता आर्यभट्ट-द्वितीय के मत में यह सृष्टिकाल तीस-लाख चौबीस-हजार वर्ष ही है। परम्परा से सूर्यसिद्धान्त का मत ही प्रचलित है। अतः उपर्युक्त कल्पगत में से सूर्य-सिद्धान्त का सृष्टिकाल घटाने से एक अरब पचानवें करोड़ अठावन लाख पचासी हजार छियासी वर्ष सृष्टि प्रारम्भ हुए हो गए हैं। यह गणना शक १९०७ में समझना चाहिए। यही सृष्टि-संवत् कहलाता है। अर्थात् ग्रहनक्षत्रादि का निर्माण पूर्ण हुए इतने वर्ष बीत चुके हैं। वैसे इनके निर्माण का कार्य कल्पादि से ही प्रारम्भ हो गया था।

संवत्-गणना

यहां तक हमने सृष्टि-रचना से सम्बन्धित विभिन्न कालगणनाओं का अध्ययन किया। इस प्रक्रिया में बड़ी-बड़ी संख्याएं हैं। अतः विभिन्न मुख्य कालखण्ड अथवा महापुरुषों से भी वर्षगणना की जाती है, जो पहले से अपेक्षाकृत छोटी संख्या की होने से व्यवहार में अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। इस क्रम में विश्व में अनेक देश और जातियों ने अनेक संवत् चलाये हैं । उनमें कुछ अभी भी प्रचलित हैं। वर्ष की क्रमिक गणना ही संवत् कहलाती है। संवत् अपने से सम्बन्धित देश, जाति तथा व्यक्ति की सभ्यता तथा संस्कृति के स्मारक होते हैं। जिसका संवत् जितना पुराना होगा उसकी सभ्यता-संस्कृति निश्चय ही उतनी पुरानी होगी।

इस दृष्टि से भारतवर्ष विश्व में सर्वश्रेष्ठ है। यहां पर परम्परा से धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक कार्यों में प्राचीनतम संवतों का उपयोग होता रहा है। प्रतिदिन प्रातःकाल सन्ध्यावन्दन के पूर्व विगत एवम् वर्तमान, सभी कालखण्डों के उल्लेख करने का धर्मशास्त्र में निश्चित विधान करके, भारतवर्ष में अपने गौरवपूर्ण इतिहास को प्रतिदिन स्मरण करने का एक अनुपम उदाहरण स्थापित किया गया है। इस सांस्कृतिक प्रेरणा स्रोत की अजस्रधारा में नित्य-निरन्तर स्नान करते रहने से उद्‌बुद्ध देश, जाति एवं व्यक्ति के आत्मगौरव की भावना तथा गौरव-पूर्ण घटनाओं के बाहुल्य के कारण भारतवर्ष में संवतों की भी बहुलता है। यह एक अलग ही अध्ययन का विषय है। इस विषय पर अनेक स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी गयी हैं। इस विषय का यहां पूर्ण विवरण देना संभव नहीं है। फिर भी कुछ प्रमुख प्रचलित संवतों का यहां परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है।

संसार का सबसे प्राचीन संवत् कल्पसंवत् है। इसके बाद सृष्टि संवत् है, जिसका परम्परा से भारतीय-पंचांगों में उल्लेख होता आया है। इन दोनों का विवरण पीछे दिया जा चुका है। इसके अनन्तर वर्तमान मनु और महायुग के प्रारम्भ से भी संवत् माने जाते हैं। अत्यन्त प्राचीनकाल से बार्हस्पत्य-संवत्सर की परिपाटी है। पुनश्च सत्ययुग के प्रथम चरण में मत्स्यावतार, द्वितीय चरण में कूर्मावतार, तृतीय चरण में वराहावतार और चतुर्थ चरण मे नृसिंहावतार हुए। त्रेता के प्रथम चरण में वामन, द्वितीय चरण में परशुराम तथा तृतीय चरण में रामावतार हुए। इन सभी के संवत् पृथक्-पृथक् माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त युधिष्ठिर-संवत् और श्रीकृष्णसंवत् भी प्रचलित हैं।

कलिसंवत्

कलिसंवत् भी व्यवहार में अधिक प्रचलित है। इसके गत वर्षों की गणना की जाती है, जिसे गतकलि कहते हैं। अभी शक १९०७ में गतकलि ५०८६ है। केरल में तो कलियुग के गत दिनों की गणना भी प्रतिदिन की जाती है। इसके अतिरिक्त सप्तर्षिसंवत् भी प्रचलित है।

सप्तर्षि-संवत्

सप्तर्षि-संवत् का प्रचलन काश्मीर में है। इसके कई नाम हैं, जैसे :— देव-संवत्, नक्षत्र-संवत्, शास्त्र-संवत्, लौकिक-संवत् तथा पहाड़ी-संवत्। इसमें ऐसा माना जाता है कि सप्तर्षि प्रत्येक नक्षत्र में सौ-सौ वर्ष निवास करते हैं। अतः इसका

२७०० वर्षों का चक्र होता है। इसके बाद पुनः एक से प्रारम्भ होता है। इसमें शताब्दी का अंक छोड़कर नक्षत्र के साथ केवल शेष अंक लिखने की परिपाटी है। युधिष्ठिर के राज्यकाल में सप्तर्षि मघानक्षत्र में थे। वर्तमान विक्रम संवत् २०४२ में सप्तर्षि-संवत् आर्द्रा ६२ है।

विक्रम-संवत्

भारतीय इतिहास में शकों को पराजित करने वाले महाराजा विक्रमादित्य का नाम भारत में कौन नहीं जानता होगा। उन्होंने शकों पर विजय के उपलक्ष्य में सारी प्रजा का ऋण उतार कर अपना संवत् प्रवर्तित किया था। इसे पहले मालव-संवत् कहा जाता था। इसका प्रारम्भ ईस्वी सन् से ५८ वर्ष पूर्व माना जाता है। उत्तर भारत में चान्द्रमान से चैत्र कृष्णा वा शुक्ला प्रतिपदा को गुजरात में कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को तथा पंजाब और नेपाल में सौरमान से मेषसंक्रान्ति को इसका आरम्भ होता है। इसके आरम्भ में गतकलि ३०४४ था। इस संवत् का प्रचार लगभग सारे भारत में है। फिर भी उत्तर भारत में इसका प्रचलन अधिक है। अधिकांश प्रान्तों में इसे चान्द्र ही मानते हैं। पंजाब आदि पश्चिमोत्तर भारत में यह सौर है। गुजरात में यह शुक्लादि चान्द्र हैं। शेष भारत में यह कृष्णादि चान्द्र है। पूर्व-वर्ती मालवसंवत् ही तेरहवीं शताब्दी से विक्रमसंवत् कहा जाने लगा है। इसकी गत संख्या गणना की जाती है।

शक-संवत्

ज्योतिष के प्राचीन ग्रन्थों में इसे शककाल कहा गया है। तेरहवीं शताब्दी से इसे शालिवाहन-शक कहा जाने लगा है। इसका आरम्भ प्रतिष्ठानपुर के राजा शालिवाहन ने किया था। वैसे प्राचीन ग्रन्थों में संवत् के अर्थ में शक शब्द का प्रयोग होता था। इसका आरम्भ विक्रम-संवत् से १३५ वर्ष बाद में हुआ। ज्योतिषी लोग इसे सौर मानते हुए मेष संक्रान्ति से इसका आरम्भ करते हैं। संभवतः सौर होने से ही सुविधा के कारण ज्योतिषियों ने इसे सारे भारत में अपनाया है। वैसे दक्षिण भारत में इसका व्यवहार अधिक है। कहीं-कहीं इसे चैत्र शुक्लाप्रतिपदा से भी आरम्भ करते हैं। ईस्वी सन् में ७८ घटाने से अथवा विक्रमसंवत् में १३५ घटाने से शकसंवत् होता है। इसकी भी गतसंख्या की गणना होती है। भारत सरकार ने सायन मेषसंक्रान्ति से राष्ट्रीय-शक के नाम से इसे प्रचलित किया है।

ईस्वीसन्

ईस्वी सन् का आरम्भ ईसामसीह की मृत्यु से माना जाता है। परन्तु वास्तव में अभी तक ईसामसीह सचमुच हुए थे, तथा उनकी मृत्यु कब हुई थी ? यह निर्णय नहीं हो पाया है। अतः यह एक काल्पनिक धारणा पर आधारित है। वस्तुतः इसका मूल रोमन-संवत् है, जो ईस्वीपूर्व ७५३ में रोम-नगर की प्रतिष्ठा से आरम्भ हुआ था। इसके पूर्व रोमनों का कोई संवत् नहीं था। रोमनसंवत् ३०४ दिन का माना जाता था; जो परम अशुद्ध था। मार्च से दिसम्बर तक इसमें १० मास होते थे। धीरे-धीरे इसमें बहुत अन्तर पड़ने लगा। इस अन्तर को ठीक करने के लिए ४६ ईस्वी पूर्व में जुलियस सीजर ने ४५५ दिन का एक वर्ष मान कर, आगे से इसे तीन सौ सवा पैंसठ दिन का बना दिया। साथ ही उसने अपने नाम से जुलाई मास बना दिया। बाद में रोम के राजा आगस्टस ने एक और मास अपने नाम पर अगस्त बनाया, तथा इसके महीनों के नाम तथा दिन निश्चित कर दिये। इस प्रकार रोमन-संवत् १२ मास तथा तीन सौ सवा पैंसठ दिन का बना। फिर भी इसमें अन्तर पड़ता रहा। ईस्वी सन् १५८२ में इसमें ११ दिन का अन्तर हो गया था। उसी वर्ष ईसाइयों के धर्मगुरु पोपग्रेगरी ने अपनी आज्ञा से ४ अक्टूबर को १५ अक्टूबर बना दिया, तथा आगे के लिए आदेश दिया कि ४ और ४०० से विभाजित होने वाले वर्षों में २९ दिन की ही फरवरी मानी जायेगी। परन्तु १०० से विभाजित होने वाले वर्षों में २८ दिन की फरवरी होगी। तब से इसे ग्रेगेरियन-कैलेण्डर कहा जाता है। ईसाईवर्ष होने से धीरे-धीरे इसे सभी राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया, तथा बाद में अंग्रेज़ों के विश्वव्यापी प्रभुत्व ने इसे विश्वव्यापी बना दिया।

पहले इसका आरम्भ २५ मार्च से माना जाता था। परन्तु अठारहवीं शताब्दी से इसका आरम्भ एक जनवरी से माना जाता है। इसके मासों के नाम तीन आधारों पर हैं। १. जनवरी से जून तक रोमन देवताओं के नाम पर, २. जुलाई और अगस्त राजाओं के नाम पर तथा ३. सितम्बर से दिसम्बर तक रोमन-संवत् के मासों की संख्या के नाम पर। इसके मासों की दिनसंख्या कल्पित है। इसमें कोई वैज्ञानिक आधार नहीं लिया गया है। इसका विवरण इस प्रकार है :—

जनवरी—यह ३१ दिन का मास ग्रीक के द्विमुखी देवता जेनेस के नाम पर है। यह पुरानी गणना में ग्यारहवाँ तथा नवीन गणना में प्रथम मास है।

फरवरी—यह २८ या २९ दिन का मास पुरानी गणना में बारहवां तथा नयी गणना में दूसरा मास है।

मार्च—यह ३१ दिन का मास मार्स (मंगल) के नाम पर है। पुरानी गणना में यह प्रथम मास है।

एप्रिल—यह ३० दिन का मास पुरानी गणना में दूसरा मास है।

मई—यह ३१ दिन का मास बुध की माता मयादेवी के नाम पर है।

जून—यह ३० दिन का मास शनि की पुत्री तथा वृहस्पति की स्त्री के नाम पर है।

जुलाई—यह ३१ दिन का मास जुलियस सीजर के नाम पर है।

अगस्त—यह ३१ दिन का मास आगस्टस के नाम पर है।

सितम्बर—यह ३० दिन का मास रोमनसंवत् का सातवां मास है।

अक्टूबर—यह ३१ दिन का मास रोमनसंवत् का आठवां मास है।

नवम्बर—यह ३० दिन का मास रोमनसंवत् का नौवां मास है।

दिसम्बर—यह ३१ दिन का मास रोमनसंवत् का दशवां मास है।

पारसीसन्

पारसी-सन् का मूल स्थान ईरान है। इसका प्रथम चलने वाला सन् ईरान के प्रथम राजा ने चलाया था। अब प्रचलित नया सन् यज्दीजर्द ने विक्रमसंवत् ६८९ में चलाया था। इसके मास ३० दिन के तथा वर्ष १२ मास के होते हैं। वर्ष के अन्त में ५ दिन की गाथा होती है। इस प्रकार ३६५ दिन का वर्ष हो जाता है। शेष घट्यादि के अन्तर को १२० वर्ष बाद एक अधिकमास मान कर ठीक कर लेते हैं। इन मासों के नाम पारसी-धर्म के देवदूतों के नाम पर हैं। १. फरवरदीन, २. उर्दी बहिस्त ३. खुर्दाद, ४. तीर, ५. अमरदाद, ६. शहरयार, ७. मिहर, ८. आवान, ९. आजर १०. देय, . वहमन, तथा १२. इस्फन्दयार। इस सन् का आरम्भ भाद्र या आश्विन से होता है। वर्तमान विक्रम संवत् २०४२ में पारसी सन् १३५३ है।

हिजरी-सन्

हिजरी-सन् मुसलमानों का धार्मिक एवं राष्ट्रीय सन् है। १५ जुलाई सन् ६२२ ई० को इस्लाम के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद अपने विरोधियों के उत्पात से परेशान होकर मक्का छोड़ कर मदीना चले गये। १७ साल बाद अरब के खलीफा उमर ने रमजान मास में निश्चय किया कि पैगम्बर के मक्का छोड़ने की तारीख से हिजरी-सन् का आरम्भ माना जाये। हिजरी-सन् चान्द्रगणना से चलता है। शुक्ल पक्ष में चन्द्रदर्शन होने पर प्रतिपदा से अन्यथा द्वितीया से इसके मास का आरम्भ

होता है। इसकी तारीख का आरम्भ सायंकाल से होता है। प्रतिपदा को चन्द्रदर्शन होने पर ३० दिन का तथा द्वितीया को चन्द्रदर्शन होने पर २९ दिन का मास माना जाता है। इसका वर्ष चान्द्र होने से संसार के अन्य सौरवर्षों की तुलना में साढ़े बत्तीस वर्ष बाद इसकी एक संख्या अधिक हो जाती है। इस के मास ऋतु-चक्र से पीछे-पीछे खिसकते रहते हैं। इसके मासों के नाम तथा दिन संख्या इस प्रकार है।

१. मुहर्रम—३०, २. सफर—२९., ३. रबीउल अव्वल—३०., ४. रबीउल आखिर—२९, ५. जमादी उल अव्वल—३०, ६. जमादीउल आखिर—२९ ७. रज्जव—३०. ८. शावान—२९, ९. रमजान—३०, १०. शव्वाल—२९, ११. जिल्काद—३०, १२ जिल्हेज—२९

हिजरी-सन् को ३० से विभाजित करने पर यदि २,५,७,१०,१३,१६, १८,२१, २४,२६, और २९ शेष रहे तो जिल्हेज मास ३० दिन का होता है।

चीनी-कालगणना

चीन का मास चान्द्र है। परन्तु इस का वर्ष सायन-सौर है। इसका संवत् २६३७ ई० पू० में आरम्भ हुआ था। इसके संवत् की गणना ६० वर्ष के चक्र में की जाती है। जैसा कि दक्षिण भारतीय पद्धति में वार्हस्पत्य संवत्सर के विषय में बतलाया गया है। गत १९८३ ई० में इसके संवत् के ७७ वें चक्र का अन्तिम वर्ष समाप्त हुआ है।

जब सूर्य सायन-मेषादि में संक्रान्ति करता है, तब इसके वर्ष का आरम्भ होता है। इसके मासों के नाम एक, दो, आदि संख्याओं से बतलाये जाते हैं। इसके कोई विशेष नाम नहीं होते। इसमें अधिमास की भी व्यवस्था है। हमारे सप्ताह के स्थान में इनके दिन समूह में ६० दिन होते हैं। उनके नाम वे ही होते हैं जो, ६० वर्ष के चक्र में वर्षों के नाम हैं। इनकी तिथि का आरम्भ मध्यरात्रि से होता है, और सारे दिन-रात को १२ भागों में बांटा जाता है।

इस प्रकार चीन की कालगणना भारत की तरह ही चान्द्र-सौर है। ६० वर्षों का चक्र भी एक विशेष साम्य दिखलाता है। इससे यह परिलक्षित होता है कि यह कालगणना भारत से ही वहां गयी हुई है। संभवतः बौद्धधर्म के साथ यहां की कालगणना का भी भारत के बौद्ध आचार्यों ने वहां पर प्रचार किया था।

संवतों का विवरण

आगे भारतीय-संवतों के विवरण के रूप में उनकी वर्तमान या गत गणना, चान्द्र तथा निरयण-सायन सौर-भेद, आरम्भ-तिथि तथा उनके प्रचार का क्षेत्र आदि दिखलाया जा रहा है। यह सारणी वेंकटेश बापू जी केतकर की इण्डियन ऐण्ड फोरेन क्रोनोलोजी नामक पुस्तक के आधार पर दी जा रही है।

कोष्ठक संख्या—चौदह

संवतों का संक्षिप्त परिचय

क्र. सं	संवत् नाम	गत या वर्तमान	सायन वा निरयण	चान्द्र वा सौर	आरम्भ वर्ष	वर्षारम्भ तिथि	प्रचार का क्षेत्र, विशेष
१.	जुलियन	वर्तमान	सायन	सौर	४७१३ ई० पू०	जनवरी-१	ज्यौतिष गणना
२.	यहूदी	वर्तमान	निरयण	चान्द्रसौर	३७६१ ई० पू०	सितम्बर, तेसेरी-१	यहूदी
३.	कलिसंवत्	गत	निरयण	,,	३१०२ फर. ई० पू०	चैत्र शुक्ला-१	हिन्दू
४.	चीनी	वर्तमान	सायन	,,	फर. २६३७ ई० पू०	नं०-१ शुक्ला	चीनी
५.	सप्तऋषि	,,	निरयण	,,	अप्रैल ३०७६ ई० पू०	चैत्र शुक्ला-१	काश्मीर
६.	विक्रम	गत	,,	,,	नव. ५८ ई० पू०	कार्तिक शुक्ला-१	गुजरात
७.	,,	,,	,,	,,	अप्रैल ५८ ई० पू०	चैत्र कृष्णा-१	उत्तर भारत, मिथिला आदि
८.	,,	,,	,,	,,	,,	चैत्र शुक्ला-१	उत्तर भारत
९.	,,	,,	,,	सौर	,,	मेष संक्रान्ति	पंजाब, नेपाल
१०.	ईस्वी	वर्तमान	सायन	,,	१ ई०	१ जनवरी	सम्पूर्ण विश्व
११.	शक	गत	निरयण	,,	अप्रैल ७८ ई०	मेष संक्रान्ति	भारत
१२.	,,	,,	,,	चान्द्रसौर	,,	चैत्र शुक्ला	दक्षिण भारत

कोष्ठक संख्या— चौदह

क्रं. सं.	संवत् नाम	गत या वर्तमान	सायन वा निरयण	चान्द्र वा सौर	आरम्भ वर्ष	वर्षारम्भ तिथि	प्रचार का क्षेत्र, विशेष
१३.	चेदि	वर्तमान	निरयण	चान्द्रसौर	अक्टूबर २४७ ई०	आश्विन कृष्णा-१	ऐतिहासिक
१४.	वल्लभी	,,	,,	,,	नवम्बर ३१८ ई०	कार्तिक शुक्ल-१	काठियावाड़ ई० ४००-१३००
१५.	गुप्त	,,	,,	,,	अप्रैल ३१९ ई०	चैत्र कृष्णा-१	मध्य प्रदेश ई० ४००-७००
१६.	विलायती	,,	,,	सौर	सितम्बर ५९२ ई०	कन्या संक्रान्ति	उड़ीसा
१७.	अमली	,,	,,	चान्द्रसौर	अक्टूबर ५९२ ई०	भाद्र शुक्ला-१२	,,
१८.	बंगाली	,,	,,	सौर	अप्रैल ५९३ ई०	मेष संक्रान्ति	बंगाल, उड़ीसा
१९.	मगी	,,	,,	,,	अप्रैल ६३८ ई०	,,	चटगांव
२०.	डेक्कन फसली	,,	,,	,,	जून ५९१ ई०	मृगादि	राजस्वकार्य
२१.	सूरसन् या अरबीसन्	,,	,,	,,	जून ५९९ ई०	,,	मराठा काल
२२.	हर्षकाल	,,	,,	,,	नवम्बर ६०६ ई०	—	नेपाल (ऐतिहासिक)
२३.	हिजरीसन्	,,	---	चान्द्रसौर	जुलाई ६२२ ई०	मुहर्रम-१	मुसलमान

कोष्ठक संख्या—चौदह

क्र. स.	संवत् नाम	गत या वर्तमान	सायन वा निरयण	चान्द्र वा सौर	आरम्भ वर्ष	वर्षारम्भ तिथि	प्रचार का क्षेत्र, विशेष
२४.	कोल्लम	वर्तमान	निरयण	सौर	सितम्बर ८२५ ई०	कन्यासंक्रान्ति	उत्तर केरल
२५.	,,	,,	,,	,,	,,	सिंह संक्रान्ति	दक्षिण केरल कोचिन, त्रावन कोर
२६.	नेवार	गत	,,	चान्द्रसौर	नवम्बर ८७९ ई०	कार्तिक शुक्ला-१	नेपाल ई० ८७८-१७६८
२७.	चालुक्य	,,	,,	,,	अप्रैल १०७६ ई०	चैत्र शुक्ला-१	डेक्कन ई० १०७९-११६२
२८.	लक्ष्मणसेन	,,	,,	,,	नवम्बर १११८ वा ११०८	कार्तिक शुक्ल-१	मिथिला, बंगाल
२९.	राजशक	वर्तमान	,,	,,	जून १६७३ ई०	ज्येष्ठ शुक्ला-१३	महाराष्ट्र, श्रीशिवाजी-राज्यारोहण तिथि-संवत्
३०.	कोप्टिक	,,	सायन	सौर	२८४ ई०	अगस्त-२९	मिश्रदेश
३१.	राष्ट्रीय-शक	गत	,,	,,	७८ ई०	सायन मेष संक्रान्ति	भारत सरकार (स्वतन्त्रता के बाद प्रवर्तित)
३२.	भारतीय स्वतन्त्रताब्द	वर्तमान	,,	,,	१९४७ ई०	१५ अगस्त	भारत

संवतों की समानान्तर स्थिति

अब वर्तमान में किस संवत् की कितनी संख्या चल रही है उसे प्रदर्शित किया जायेगा। जो संवत् गतगणना से चलता है उसकी गतसंख्या, तथा जिसकी वर्तमान गणना चलती है, उसकी वर्तमान संख्या का निर्देश किया जाएगा। इससे संवतों की समानान्तर स्थिति को समझने में सुविधा होगी।

कोष्ठक संख्या—पन्द्रह

संवतों की समानान्तर स्थिति

भारतीय		विदेशी	
संवत् नाम	वर्तमान वर्ष	सन् के नाम	वर्तमान वर्ष
कल्पाब्द	१९७२९४९०८६	चीनी	९६००२२८३
सृष्ट्याब्द	१९५५८८५०८६	खताई	८८८३८३५६
सप्तर्षि	आर्द्रा ६२	पारसी	१८९९५३
कलिसंवत्	५०८६	मिस्री	२७६०३९
बुद्धनिर्वाण	२५६०	तुर्की	७५९२
महावीर जैन	२५१२	ईरानी	५९९०
विक्रम	२०४२	यहूदी	५७४६
शक	१९०७	चीनी (२)	४३४२
कलचुरी	१७३७	तुर्की (२)	४२७६
वल्लभी	१६६५	यूनानी	३५५८
फसली	१३९३	ओलम्पीयद	२७७२
वंगला	१३९२	रोमन	२७३६
हर्षाब्द	१३७८	वर्मी	१३३३
नेपाली	११०६	जावा	१९११
चालुक्य	९०९	ईस्वी	१९८५
लक्ष्मण	८६६	हिजरी	१४०५
शिवाजी	३९१	पारसी (२)	१३५४
दयानन्द	१०१		
स्वराज्य	३८		

संकेत :—यह तालिका वि० सं० २०४२ के आधार पर दी जा रही है।

सहायक पुस्तक-सूची

१.	झा, दामोदर	भगण-समीक्षा ।
२.	......	सूर्य-सिद्धान्तः ।
३.	आर्यभट्ट (प्रथम)	आर्यभट्टीयम् ।
४.	आर्यभट्ट (द्वितीय)	महासिद्धान्तः ।
५.	माधवाचार्य,	कालमाधवः ।
६.	......	नारायणीयोपनिषत् ।
७.	......	ऋग्वेदः ।
८.	केतकर, वे. बापूजी,	केतकीग्रहगणितम् ।
९.	,, ,,	Indian and Foreign Chronology
१०.	भास्कराचार्य	सिद्धान्तशिरोमणिः ।
११.	......	विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् ।
१२.	खेडवाल, देवकीनन्दन	भारतीय कालगणना ।
१३.	दीक्षित,शंकर बालकृष्ण,	भारतीय ज्योतिष ।
१४.	पिल्लइ, स्वामी कन्नू	Indian Ephemeris.
१५.	वटेश्वर	वटेश्वर-सिद्धान्तः
१६.	......	स्कन्दपुराणम् ।
१७.	......	तैत्तिरीय-संहिता ।
१८.	वल्लालसेन	अदभुत-सागरः ।
१९.	वराहमिहिर,	बृहत्संहिता ।
२०.	,,	पंचसिद्धान्तिका ।
२१.	लगध	वेदाङ्गज्योतिषम् ।
२२.	मनु	मनुस्मृतिः ।
२३.	काणे, पाण्डुरंग वामन	History of Dharma-Shastra.
२४.	......	अथर्ववेदः ।
२५.	गिरि, स्वामी युक्तेश्वर	The Holy Science.
२६.	राजा राधाकान्तदेव	शब्दकल्पद्रुमः ।
२७.	व्यास	महाभारतम् ।
२८.	विन्ध्येश्वरी प्रसाद	प्राचीन-सिद्धान्त-पंचकम
२९.	यास्क	निरुक्तम् ।
३०.	......	मत्स्यपुराणम् ।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध-शब्द	शुद्ध-शब्द
२	१	'अन्तिम शब्द	'अन्तिम' शब्द का
४	२	राज्यासन	राज्यशासन
९	१४	१५ मनु	१४ मनु
१५	१४	कदम्बस्थान	क्रान्तिवृत्त
१६	१	कदम्वसत्रीय	कदम्बसूत्रीय
१६	४	६३	१३
१८	२८	सात-सात	सात
२२	२	वक्पतत्त्वियं	क्वपतत्त्वियं
२३	२५	अवृत्ति	आवृत्ति
२५	११	उठाता	उठता
२८	७	तत्त्तदा	तत्तदा
३०	८	उत्पत्ति	उपपत्ति
३१	५	वृ (५)/वृ (१२)	बु/बु
३३	२०	मध्याह्न	मध्याह्न
३८	९	छपरा—५५.४७	छपरा—२५.४७
५४	तारीख-२	२१/४०	२१/५०
५५	तारीख-९	१२/४५	२२/४५
५५	तारीख-१२	१७/४५	१७/५०
६५	श्लोक	द्वे-द्वे	द्वे-द्वे
६७	नीचे २-४	सम्पात्	सम्पात
७२	१३	वष	वर्ष
७४	७ वां कालम	अनुधत्सर	अनुवत्सर
,,	,,	क्रोधन्	क्रोधन
८६	अन्तिम	कार्निक	कार्तिक

लेखक-परिचय

नाम : डा० दामोदर झा

पितृनाम : पं० अच्युतानन्द झा

जन्म स्थान : ग्राम–कोआरी मदन। जिला–सीतामढ़ी (बिहार)
उच्चतम शिक्षा नेपाल राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, मतिहानी जिला–महुतरी, नेपाल।

विश्वविद्यालय परीक्षा में सर्वदा प्रथम चार स्थानों में।
सन् १९६२ में कामेश्वरसिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा से गणित ज्यौतिष विषय लेकर आचार्य परिक्षा में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त कर स्वर्ण–पदक प्राप्त किया। इसी परीक्षा में नया कीर्तिमान छः वर्ष तक बनाये रखने के लिए म० म० हरिहर कृपालु द्विवेदी स्वर्णपदक प्राप्त किया।

सन् १९७० में ही मिथिला संस्कृत शोध संस्थान, दरभंगा–बिहार से विश्वविद्यालय की एम० ए० (संस्कृत) परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण।
सन् १९७१ में संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा से "काल और ग्रहगति का सम्बन्ध" विषय पर विद्यावारिधि (पी०एच०डी०) की।

अनेक संस्थाओं में अध्यापन के वाद सन् १९७२ ई० से विश्वेश्वरानन्द विश्ववन्धु संस्कृत एवं भारत–भारती अनुशीलन संस्थान में कार्यरत।

रचनायें :

संस्कृत, हिन्दी, मैथिली तथा अंग्रेजी में साहित्य, दर्शन, वेद और ज्यौतिष से सम्वन्धित ४० के लगभग कविता, शोधलेख तथा समीक्षायें प्रकाशित।

प्रकाशित पुस्तक :

१. भगण समीक्षा (काल और ग्रहगति के सम्वन्ध की समीक्षा)
२. भविष्य पुराण की सत्यनारायण कथा।